वनस्पति वाणी

वर्ष 15 सितम्बर 2005 अंक 14

वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के लिखित पुर्वानुमति के बिना पुनप्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

डा० एम संजप्पा	:	संरक्षक
डा० हर्ष चौधरी	:	सम्पादक
नवीन चौधरी	:	सहायक सम्पादक

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी है ।
- इस अंक में दिए गए ''पर्यावरण के नारे '' राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय के सौजन्य से साभार ।
- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सकिय सहयोग प्रदान किए हैं ।

आवरण चित्र : पाइपर नाइग्रम वार० मैको स्टैकियम
(जंगली काली मिर्च) छाया : अंबरीश)

विषय सूची

1.	सम्पादकीय - सुनामी लहरें बनाम मानव अतिक्रमण			1
2.	विलियम ग्रिफिथ (1810-1845)	:	एम. संजप्पा एवं पी. सिंह	3
3.	जीन रूपांतरित और सुपर ऑरगेनिक फसलें	:	हर्ष चौधरी	5
4.	पारसनाथ वन्यजीव अभयारण्य : एक पूर्वावलोकन	:	विनय रंजन एवं हर्ष चौधरी	7
5.	अरूणाचल प्रदेश के कुछ दुर्लभ औषधीय शाक	:	अनंत कु० बैश्य एवं रितेश कु० चौधरी	9
6.	भारत में कैरेक्स वंश (मोथा कुल-साइपेरेसी)	:	आर० सी० श्रीवास्तव एवं रूचिरा कनौजिया	13
7.	अरूणाचल प्रदेश के कुछ विषैले पौधे	:	हिमांशु शेखर महापात्र एवं रितेश कु० चौधरी	15
8.	अपर सुबनसिरी जिले के वन एवं वनस्पतियाँ : एक अवलोकन	:	कुमार अम्बरीष एवं ए. के. वैश्य	17
9.	मेहाओ वन्य जीव अभयारण्य – कवक सर्वेक्षण	:	जय राम शर्मा, दीपिका बिष्ट एवं बी. पी. उनियाल	22
10.	अरूणाचल प्रदेश की वनस्पति-विविधता एवं इसका संरक्षण	:	अनंत कु० वैश्य एवं रितेश कु० चौधरी	27
11.	महिलाओं का पर्यावरण संरक्षण में योगदान	:	एस० एल० गुप्त	31
12.	कुकरौन्धा (ब्लूमिया लैसेरा) एक औषधीय पौधा विशेषतः बवासीर निदानक	:	कृष्ण कुमार खन्ना एवं अजय कुमार झा	34
13.	कृषि वानिकी (एग्रोफॉरेस्ट्री)–एक नवीन धारणा	:	अजय कुमार झा एवं कृष्ण कुमार खन्ना	35
14.	जलवायु परिवर्तन और उसका वनस्पतियों पर प्रभाव	:	हरीश सिंह 'भुजवान'	38
15.	नक्षत्र पौधे	:	आर. के. गुप्ता	41
16.	अंडमान की ओंगी जनजाति तथा उनका परिवेश	:	विनोद मैना	43
17.	कुछ रोचक तथ्य : क्या आप जानते है?	:	हर्ष चौधरी	46
18.	प्रकृति केअमूल्य पाँच वृक्ष	:	नन्दलाल तिवारी	49
19.	''पर्यावरण समाचार''	:	संजीव कुमार	51

20.	वसुन्धरा का भौगोलिक दर्पण (कविता)	: भोलानाथ	53
21.	भारतीय वनस्पति उद्यान (कविता)	: आर के गुप्ता एवं संगीता कुमारी	54
22.	पूर्वोत्तर भारत के कुछ उपयोगी एवं आर्थिक महत्व के पेड़-पौधो की प्रजातियाँ–मूल्यांकन एवं संरक्षण	: विपिन कुमार सिन्हा एवं एस. एल. अब्बास	55
23.	सबसे बड़ा फूल	: प्रबीर रंजन सूर व सव्यसाची साहा	58
24.	हरितोद्भिद – एक परिचय	: सुशीलकुमार सिंह	59
25.	बाँस - सर्वगुण संपन्न प्राकृतिक संसाधन	: पुष्पा कुमारी	61

सम्पादकीय

सुनामी लहरें बनाम मानव अतिक्रमण

सुनामी (स्यु-ना-मी) जापानी भाषा का एक शब्द हैं जिसका अर्थ है 'बंदरगाह लहरे' (harbour waves)। सुनामी लहरें तल में आये भूकंप, ज्वालामुखी विस्फोट, भूस्खलन अथवा उल्कापात से उत्पन्न होती हैं। इन सबके कारण महासागरीय गहराइयों में विशाल जलराशियों के वृहद स्तंम्भों की शृंखला बनती है जो चारों दिशाओं में 600-800 कि० मी० प्रति घंटे की गति से प्रवाहित होती हैं और जैसे ही ये लहरे तटवर्ती कम गहराइ वाले या छिछले क्षेत्रों में प्रवेश करती है उनकी ऊँचाई 50 मी० तक पहुंच जाती है। इन्हीं लहरों को सुनामी कहते हैं। गत 26 दिसम्वर वर्ष 2004 का अंतिम रविवार काला रविवार सिद्ध हुआ। पोर्टब्लेयर से लगभग 1000 कि० मी० दूर सुमात्रा द्वीप, जो इन्डोनेशिया के उत्तरी छोर पर स्थित है, के निकट गहरे समुद्र तलमें आये एक अत्यंत शक्तिशाली भूकंम्प, जिसकी तीव्रता रिक्टर स्केल पर 9.0 मापी गई, ने समूचे समुद्रतल को बुरी तरह हिला दिया और फलस्वरूप क्रुद्ध समुद्र में उत्पन्न दैत्याकार पानी की लहरों ने निकट और सुदूर के तटवर्ती क्षेत्रों में विनाश की ऐसी लीला रच डाली जो आनेवाली पीढ़ियां को भी कचोटती रहेगी।

ये लहरें इंडोनेशिया में प्रातः लगभग 6.30 बजे उठी थी और 8.30 पर चेन्नई के मेरीना बीच पर पहुंची। प्रत्यक्ष दर्शकों का कहना है कि सर्वप्रथम समुद्र का पानी लगभग एक किलोमीटर पीछे हट गया फिर अचानक प्रलयकारी उँची, प्रबल वेगवाली लहरों के साथ वापस आकर तटसे सबकुछ अपने साथ बहा ले गया। भारत के अंडमान व निकोबार और मुख्य भूमि का समूचा पूर्वीतट अचानक आई सुनामी लहरों के कोप का भाजन बना। इतना ही नहीं यहाँ बाद में भी भूकंम्प के झटके रूक रूक कर कई दिनों तक आते रहे जिनसे यहाँ के बचे निवासी आतंकित रहे। भारत के मुख्य भूमि वाले क्षेत्रमें सर्वाधिक हानि तमिलनाडु के तट पर बसे निवासियों को हुई। भारत का दक्षिणतम सिरा 'इंदिरा प्वांइट' अब भारत के नक्शो से इन सुनामी लहरों द्वारा मिटा दिया गया है।

पर्यावरण विशेषज्ञों का मानना है कि हिन्द महासागर में उठी सुनामी लहरों के विनाश के प्रभाव को बढ़ाने में समुद्र के किनारे मानवीय गतिविधियों, तटों पर भवनों का निर्माण और प्राकृतिक संरक्षणो के नष्ट होने का महत्वपूर्ण योगदान है।

उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र के तटवर्ती भागों में ऐसे अनेकों प्राकृतिक रोधक तंत्र (Buffer) विद्यमान है जो चक्रवात, समुद्री तूफान, और सुनामी सरीखी लहरों की गति को कम कर इससे होने वाली तबाही को काफी हद तक कम करने में सहायक हैं। मूंगे की चट्टानें या शैल भित्ति (coral reef) समुद्र में पानी की सतह के नीचे वर्षावनों (rain forest) की तरह उगती हैं जो समुद्री किनारों के इर्द गिर्द एक सुरक्षात्मक ढाल बनाती हैं। इसी प्रकार मैनग्रोव वन समुद्र और तटभूमि के बीच एक मजबूत अवरोधक की भूमिका निभाते हैं। बालू के टिब्बे (sand dunes) उँची खड़ी चट्टानें (cliffs), बेलांचली वन (littoral forests) आदि भी अवरोधकों (Buffers) का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। यदि ये सभी संरक्षित व सुरक्षित रखे जा सकें तो समुद्री विभीषिकाओं से होनेवाली क्षति को कम किया जा सकता है।

कुछ वर्षों पहले उड़ीसा के तटवर्ती क्षेत्रों में आये भीषण चक्रवात (Super cyclone) के समय ऐसा देखा गया कि जिन क्षेत्रों में मैनग्रोव वन सुरक्षित थे वहाँ जानमाल का अपेक्षाकृत कम नुकसान हुआ बनस्बित उन क्षेत्रों के जहाँ मैनग्रोव वनों का विनाश हुआ था। इसी प्रकार के विवरण (reports) हाल में आई सुनामी लहरों के दौरान भी प्राप्त हुये। तमिलनाड् के पिचावरम (Pichvaram) और मुथूपेट (Muthupet) इलाकों के

निवासी अपने संरक्षित मैनग्रोव वनों के कारण सुरक्षित रह सकें। जबकि केरल प्रदेश में कोल्लम (Kollam) व अलापूजा (Alappuzha) जैसे क्षेत्र सुनामी लहरों के प्रकोप से अछूता नहीं रह सके। जबकि समुद्र तट से दूर होने के कारण इन स्थानों में इसका प्रभाव कम होना चाहिये था किन्तु समुद्र तटीय बालू के अवैध खनन से प्रकृति द्वारा बनाया गया सुरक्षा कवच नष्ट होने की कीमत यहाँ के निवासियों को अपनी जान और माल देकर चुकानी पड़ी।

आज समुद्र तटों पर बड़े पैमाने पर हो रहे परिवर्तनों ने यहाँ के पर्यावरण और पारिस्थितिकी (ecology) को अपार क्षति पहुँचाई है। समुद्री किनारों पर बसे अधिकांश महानगरों के तट पर्यटक स्थलों में बदले जा चुके हैं। प्राकृतिक सुरक्षा अवरोधों (buffers) का समूल नाश हो गया है। प्राकृतिक आपदाओं को रोक सकने का कोई उपयुक्त साधन नहीं रह गया है। आज यह आवश्यक है कि हम अपने हित में इन नष्ट हो चुके सुरक्षा तंत्रों को पुनर्जीवित करें ताकि भविष्य में इन आपदाओं से होने वाली जनजीवन व सम्पत्ति की सुरक्षा हो सके।

- पर्यावरण यदि दूषित है तो जीवन है बेकार।
  वृक्ष लगाकर कीजिये जीवन को साकार।।

- नीला नभ हो निर्मल नीर।
  धरा हरी हो स्वच्छ समीर।।

- पर्यावरण सुरक्षा का सरल उपाय।
  वन काटा नहीं लगाया जाय।।

विलियम ग्रिफिथ (1810-1845)

एम. संजप्पा एवं पी. सिंह

"किसी वनस्पतिज्ञ ने कभी इतनी विस्तृत गवेषणा नहीं की, किसी ने इतनी जातियों (अनुमानतः 9000) का संग्रह नहीं किया जितना ग्रिफिथ ने तेरह वर्षों के अपने अल्प भारतीय कार्यकाल में किया; पौधों के जीवित नमूनों के इतने वर्णन अन्य किसी ने नहीं किए। वनस्पति विज्ञान में उनके पूर्ववर्ती समकालीनों में क्षमता और तल्लीनता थी : ग्रिफिथ में प्रतिभा थी।" – सर जार्ज किंग

टॉमस ग्रिफिथ के कनिष्ठ पुत्र विलियम ग्रिफिथ का जन्म 4 मार्च 1810 को सरे, इंगलैंड में हुआ था।

लन्दन विश्वविद्यालय में चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर वे प्रोफेसर लिंड्ले के शिष्य बने। वहाँ श्री आर एच सूली व अन्य के सानिध्य में उन्होंने अल्प काल में वनस्पति विज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया। किशोरावस्था में उन्होंने काष्ठ संरचना का सूक्ष्म निरूपण तथा *फाइटोक्रिन जाइगेंटिया* फूल का विश्लेषण प्रस्तुत किया। *टर्जिओनिया हाइपोफाइला* के विकास व संरचना तथा *मार्केंशिया पॉलिमॉर्फा* पर उनकी रचना 1832 में छपी। उनके कामकाज से प्रभावित होकर डा. वालिच ने कहा, "वनस्पतिज्ञ के रूप मे अपनी प्रतिभा और ज्ञान के कारण वह सभी विज्ञान प्रेमियों के आदर के पात्र है"। एम डी मिर्बेल ने भी उनकी प्रशंसा की।

मई 1832 में लन्दन विश्वविद्यालय में शिक्षा समाप्त करने के बाद वे भारत के लिए रवाना हुए। शीघ्र ही ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उन्हें एसिस्टेंट सर्जन पद पर बहाल किया। 1835 में उन्हें एक डेपुटेशन का सदस्य बनाया गया जिसमें वे और डा. वालिच वनस्पतिज्ञ के रूप में तथा श्री मैक्लिलैंड भूगर्भशास्त्री थे। यह डेपुटेशन असम के चाय बागानों के परिदर्शन एवं निरीक्षण तथा प्राकृतिक इतिहास में अनुसंधान हेतु भेजा गया था।

यहाँ से श्री ग्रिफिथ के वनस्पति अभियान का शुभारंभ हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी के सम्पूर्ण भूभाग में प्राकृतिक इतिहास की सभी शाखाओं, विशेषतः वनस्पति की गवेषणा में तत्पर हो गए। कैप्टन जेंकिन्स की देखरेख में वे कम्पनी के पूर्वी सीमान्त के उस भाग में काम करने लगे जहाँ तब तक कोई अनुसंधान नहीं हुआ था। सुहिया व एवा के बीच मिशमी पहाड़ के आस पास उनके आश्चर्यजनक संग्रह का विवरण इंटोमोलॉजिकल सोसायटी की कार्यवाही में है।

पौधों के संग्रह का अतुलनीय अभियान असम से लेकर बर्मा के एवा तक एवं इरावती से लेकर रंगून तक चलता रहा। कहा जाता है इस अभियान मे उनकी हत्या की अफवाह फैल गई। इस अभियान में खासिया पहाड़ी के पास उन्होंने सघन संग्रह किए। अभियान पूरा होने पर वे जून 1839 मे कलकत्ता वापस आ गये।

नवम्बर 1839 में ग्रिफिथ पश्चिमाभिमुख हुए। वे काबुल, हिन्दुकूश, खोराशन, अफगानिस्तान से विपुल संग्रह लेकर आए। लगातार दुर्गम स्थलों की यात्रा तथा कठिन परिश्रम से उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। फिर भी असाधारण मानसिक शक्ति के सहारे वे अपने काम में लगे रहे।

शिमला और नेर्बुडा से 1841 में वे कलकता वापस आ गए। उन्हें चिकित्सा सेवा का काम सौंपा गया। अगस्त 1842 में उन्हें पुनः बाटनिक गार्डेन का अधीक्षक बनना पड़ा। साथ साथ वे मेडिकल कालेज में बॉटनिकल प्रोफेसर का कार्य भी कर रहे थे। इससे वहाँ के छात्रों को बहुत लाभ हुआ। 1845 में वे फिर से मलक्का पहूँचे। दुर्भाग्यवश वहाँ वे हेपेटाइटिस के शिकार हो गए। साधनहीनता की परवाह किए बिना अपने काम के प्रति उनका समर्पण एवं उत्साह असाधारण था। वनस्पति के क्षेत्र में जो काम करने की उत्कंठा उनके पहले किसी में नहीं थी विलियम ग्रिफिथ वैसे काम करने में तत्पर हुए थे। उनके कुछ महत्वपूर्ण कार्य है :

1. On the Ovulum of Santalum album.
2. Notes on the Development of the Ovulum of Loranthus and Viscum and on the Parasitism of these two genera.

3. On the Ovulum of Santalum, Osyris, Loranthus and Viscum.

उन्होंने बेलेनोफोरेसी आदि पर कार्य करते हुए वनस्पति शरीर विज्ञान के कुछ कठिनतम मसलों को सुलझाने की कोशिश की। उपरोक्त पौधों की जटिल संरचना पर उन्होंने सूक्ष्म व विस्तृत शोध किया जिससे कई नई बातें सामने आई।

ऊपरी असम में चाय की खेती पर उनकी रिपोर्ट से अनेक उपयोगी जानकारी मिली। अनेको पत्र पत्रिकाओं में उनकी बहुमूल्य रचनाएँ छपती रही। उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ ''कलकत्ता जर्नल ऑफ नेचुरल हिस्ट्री'' में छपी। इसके संयुक्त सम्पादक श्री मैक्लिलैण्ड एवं वे स्वयं थे। इसमें उनकी एक रचना थी ''ऑन एजोला एंड सौल्विनिया''–इन दो पौधों पर असाधारण अनुसंधान। उनकी अन्य कई रचनाओं की तरह एक अपूर्ण रचना थी ''दी पाम्स ऑफ ब्रिटिश इंडिया''जो उनके मरणोपरांत प्रकाशित हुई। इसमें जो कुछ है उसकी जानकारी तबतक यूरोप के वनस्पतिज्ञों को नहीं थी।

उनके जीवन का महत् उद्देश्य था ''फ्लोरा ऑफ इंडिया'' का प्रकाशन। इसके लिए अत्यधिक परिश्रम की जरूरत थी। इसकी प्रस्तुति हेतु वे बारह वर्षो तक अनवरत साधना में लीन रहे। उन्होंने स्वयं खासिया पहाड़ियों से 2500, तेनासेरिम प्रदेश से 2000, असम से 1000, मिशमी परिसर के हिमालय से 1200, भूटान से 1700, कलकत्ता के आसपास से नागा पहाड़ियों से लेकर बर्मा के विभिन्न इलाकों से 1200 जातियों के संग्रह किए। जितने कड़े पैमाने से भी देखा जाए एक व्यक्ति के लिए यह उपलब्धि असाधारण है।

उन्होंने यूरोप के कुछ विख्यात वनस्पतिज्ञों को आमंत्रित किया। उनके सहयोग से विभिन्न पादपकुलों के विवरण प्रस्तुत हुए। अपनी अथक साधना का सुफल मानव जाति तक पहुँचाने की उनकी योजना उनकी असमय मृत्यु के कारण कभी पूरी नहीं हो सकी।

विलियम ग्रिफिथ को समर्पित पादप वंश

1. **ग्रिफिथिया** आर. वाइट एवं आर्नोट (1834)
2. **ग्रिफिथिएला** वारन (1901)
3. **ग्रिफिथियन्थस** मेरिल (1915)

विलियम ग्रिफिथ के प्रमुख प्रकाशन

1. जर्नल्स ऑफ ट्रेवेल्स इन आसाम, बर्मा, बूटान, अफगानिस्तान एंड दी नेबरिंग कंट्रीज कलकता : 1847
2. नोटूली एंड प्लाण्टास एशियाटिक्स : 4 खंड, कलकाता : 1847-54
3. आइकोनस प्लांटेरम एशिएटीकेरम : 4 खंड, कलकाता : 1847-54
4. इटिनेरारी नोट्स ऑफ प्लांट्स क्लक्टर इन द खासिया एंड बूटान माउंटेन्स : कलकाता : 1848
5. पाम्स ऑफ ब्रिटिश इस्ट इंडिया : कलकाता : 1850

जीन रूपांतरित और सुपर ऑरगेनिक फसलें

हर्ष चौधरी
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय

आपको शायद अबतक याद होगा कि आज से कुछ दशकों पहले जब गाँव शहरों के पडोस में बसे हुआ करते थे और हमें नित्य सुबह पड़ोसी गाँव में उगाई गई ताजा, सुस्वाद हरी सब्जियाँ आसानी से उपलब्ध हुआ करती थीं। किन्तु आज के इस आधुनिकता और औद्योगीकरण के युग में शहर के पास बसे उन गाँवों को कल कारखानों, नई नई बस्तियों ने निगल लिया है अथवा बहुत दूर ढकेल दिया है और वो रसभरे लाल टमाटर और दूसरी ताजी हरी सब्जियाँ अब सपनों की बाते हो गई है। आज ये सभी शहरों से सैकडों मील दूर उगाई जाती हैं और रेल, सड़क या वायुमार्ग से बाजारों तक पहुँचती हैं। इस लम्बे सफर में बहुत सी ऐसी सब्जियाँ और फल है जिनके सड़ने और खराब होने का भय रहता है। अब टमाटर का ही उदाहरण लीजिये जो सदियों से सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न रूप में प्रयोग होता आ रहा है और साल के बारहों महीने बाजारों मे उपलब्ध हैं। टमाटर जो मुख्यतः जाड़े के मौसम की फसल है इनकी गर्मियों में पहाड़ी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर खेती होती है। इन्हें पेडों से हरा ही तोड़ लिया जाता है और यह खेतों से मंडियों और वहाँ से बाजारों तक पहुँचते पककर लाल हो जाते हैं। लेकिन इस प्रकार तोड़े गये अध पके फल पेड़ो से सम्पूर्ण पोषक तत्व प्राप्त नही कर पाते है और उनमें पोषक तत्व और स्वाद की कमी रहती है।

किन्तु पेड़ों से तोड़े गये पके फलों का बिना सड़े गले एक लम्बा सफर तयकर बाजार तक पहुँचना संभव भी नहीं था। ऐसे में कालजीन (Calgene) नामक अमेरीकी बायोटेक कंपनी ने एक जेनेटिकली अभियंत्रित (genetically engineered) 'फ्लेवर सेवर' (flavour savour) नामक टमाटर का विकास किया। इस टमाटर की यह विशेषता थी कि इसके पेड़ो पर पके फलों को तोड़ कर मंडियों में भेजा जा सकता था क्योकि लंम्बी यात्रा के दौरान यह सड़ता या गलता नहीं था। इसका कारण था कि कालजीन कम्पनी के वैज्ञानिकों ने टमाटर के फलों के जीनोम (Genome) में एक ऐसी जीन प्रविष्ट कर दीजो फलों के सड़ने की क्रिया को धीमा कर देती है जिसके फलस्वरूप पके टमाटर काफी समय तक ताजे बने रह सकते है। लेकिन जीन रूपांतरित खाद्यों के आलोचकों ने इस 'फ्लेवर सेवर' टमाटर को 'फ्रैकेंनफूड' (franken food) बताया और 'शुद्धखाद्य आंदोलन (Pure Food Campaign) के माध्यम से जेरमी रिफकिन (Jermy Rifkin) नामक बायोटेक सक्रिय कार्यकर्त्ता (Biotech activist) ने इसे ''यू: एस. फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन'' (US. F.D.A.) से ३ सालों तक मान्यता प्राप्त नही होने दी। अन्त में जब यह किस्म बाजार में आई तो यह स्वाद की कसौटी पर खरी न उतर सकी उल्टे खेतों में यह अनेको रोगों से प्रभावित और कम उपज देने वाली सिद्ध हुई। कालजीन कम्पनी ने यद्यपि इसपर लगभग २०० मिलियन डालर की रकम खर्च कर एक उन्नत किस्म तैयार करने की कोशिश की जो सफल न हो सकी। इसे बाद में मोनसैंटो (Monsanto) नामक कम्पनी ने ले लिया। और लम्बे समय तक सुरक्षित रखे जाने योग्य टमाटर की किस्म की खोज जारी रही।

अंततः नाचुम केदार (Nachum Kedar) नामक एक इजराईली वैज्ञानिक नें 'बीफ स्टीक' (beef steak) टमाटरों के अंतर्जनन (cross breeding) से वांछित स्वाद वाले, आकर्षक एवं लम्बे समय तक रखी जा सकने वाली किस्म विकसित करने में सफलता पाई।

'जीनरूपांतरित किस्मों' (Genetically Modified organisms या GMO) को आधुनिक प्रोद्योगिकी का एक ऐसा चमत्कार माना जाता है जो किसानो की लागत कम कर बाजार में उपभोक्ताओं को कमदामों में खाद्य पदार्थों को उपलब्ध कराने के साथ साथ पर्यावरण को भी कम प्रदूषित करती हैं। आप जानते होंगे कि 'हरित क्रांति' के दौरान यद्यपि खाद्यान्नों की पैदावार में काफी बढ़ोत्तरी हुई थी परंतु इसके लिये

रासायनिक खादों, कीट नाशकों और सिंचाई में पानी के अत्यधिक प्रयोग से पर्यावरण को काफी क्षति पहुँची थी।

जीनरूपांतरित खाद्य फसलों फसलों की तुलना में जीन रूपांतरित अखाद्य फसलों का प्रदर्शन ज्यादा बेहतर पाया गया है। इसका ज्वलंत उदाहरण है 'बी. टी. कॉटन' जो कपास की एक जीन अभियंत्रित किस्म है। साधारण कपास की किस्मों को खेती में सबसे बड़ी समस्या इसके बीज कोषों को नष्ट करने वाले कीड़ों (ball worm) की है जो कपास की फसल को भारी नुक्सान पहुँचाते हैं। वर्ष 1996 में अमेरीकी कम्पनी मांनसेन्टों (Mansanto) ने एक जीन अभियंत्रित कपास की किस्म 'बी. टी. कॉटन' विकसित की जिसे 'बैसिलस थूरिजिएनसिस'(Bacillus thuringiensis) से प्राप्त एक जीन को कपास में स्थानांतरित करके प्राप्त किया गया। यह जीन बी. टी. कॉटन के कपास के पौधे में एक प्रभावशाली कीटनाशक पैदा करती है जो बॉलवर्म कीटों को नष्ट कर कपास की फसल की रक्षा करने के साथ साथ मँहगे कीट नाशकों के खर्च को कम कर किसानों और पर्यावरण को राहत देती है।

इस प्रकार की बिना किसी रासायनिक खादों और कीटनाशकों के प्रयोग से पैदा की गई खाद्य फसलों को जैविक खाद्य (Organic food) और इस प्रकार की जाने वाली खेती को जैविक कृषि (Organic farming) कहते हैं। साधारणतया किसान भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिये रासायनिक खादों का प्रयोग करते है और पौधों के बढ़ने पर बीमारियों और कीट पतंगो से रोकथाम के लिये नाना प्रकार के कीटाणुनाशकों और रासायनिक दवाओं का प्रयोग करते है जो जल, वायु और मृदा को प्रदूषित करते हैं किन्तु जैविक पद्धति में इन दोनों का प्रयोग न कर प्राकृतिक तरीकों से भूमि और बीमारियों का उपचार किया जाता है।

कृषि में सबसे महत्वपूर्ण भूमि है जो एक आश्चर्यजनक जैविक तंत्र है। जिस प्रकार मानव शरीर में बाहर से आक्रमण करने वाली बीमारियों के विरूद्ध लड़ने की क्षमता होती है ठीक उसी प्रकार भूमि (मृदा) भी किसी वाह्य अतिक्रमण को रोक सकने की शक्ति रखती है। किन्तु विभिन्न प्राकृतिक और अप्राकृतिक कारणों से इसकी प्रतिरोधात्मक क्षमता में कमी आ जाती है जिसको विभिन्न पारिस्थितिकीय उपायों (ecological treatments) से पुनः जीवित किया जा सकता है।

केवल नाईट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम, जोकि रासायनिक उर्वरकों के मुख्य घटक हैं से ही मृदा को पूर्ण उर्वर नहीं बनाया जा सकता। जैविक भौतिक पदार्थ (Organic matter) मृदा के लिये सम्पूर्ण भोजन का कार्य करते हैं। मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवी (micro organisms) जैविक भौतिक पदार्थों का अपघटन कर उन्हें सूक्ष्म कणों में परिवर्तित कर देते हैं जिसे आसानी से पेड़ पौंधों द्वारा स्वांगीकृत कर लिया जाता है।

इस प्रकार जैविक भौतिक पदार्थ, जिनमें मुख्यतः मृत पेड़ पौधे, जीव जंतु आदि होते हैं, एक आदर्श जैविक कम्पोस्ट का कार्य करता है जो मृदा को अधिक उपजाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।

जैविक कम्पोस्ट विभिन्न रूपों में खेतों में प्रयुक्त की जा सकती है जिसमें वर्मीकल्चर द्वारा, हरी खाद अथवा नाईट्रोजन फिक्सिंग पौधों (जैसे दालें) आदि प्रमुख हैं जिनके द्वारा मृदा की उर्वरा शक्ति पुनः स्थापित की जा सकती है। भारतवर्ष और विश्व के अनेकों देशों के किसानों के अनुभवों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जैविक खेती द्वारा कम लागत में रसायनों की तुलना में ज्यादा स्वादिष्ट, पौष्टिक और अधिक पैदावार ली जा सकती है। औपचारिक अध्ययनों से यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि जैविक तकनीक से उगाये गये सेबों, टमाटरों मूंगफली आदि में रसायनिक पदार्थो से उगाये गये उत्पादों की तुलना में अधिक अच्छी प्रोटीन और अधिक मात्रा में विटामिन होते हैं।

———————

पारसनाथ वन्यजीव अभयारण्य : एक पूर्वावलोकन

विनय रंजन एवं हर्ष चौधरी
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

जैन समुदाय का पवित्र तीर्थ-स्थान पारसनाथ पहाड़, झारखण्ड राज्य के गिरिडिह जिले में स्थित हैं। पारसनाथ पहाड़ में पाये जाने वाले पौधे एवं जंगली जानवरों के संरक्षण हेतु इस प्रसिद्ध पारसनाथ पहाड़ को तत्कालिन बिहार सरकार ने 1984 में वन्यप्राणि अभयारण्य घोषित किया। इस अभयारण्य का कुल क्षेत्रफल लगभग 48 वर्ग कि० मी० है तथा समुद्र तल से ऊँचाई 1200-4480 फिट है। यह अभयारण्य हजारीबाग राँची पठार में स्थित प्रदेश का सबसे ऊँचा (4480 फिट) पहाड़ हैं। इस पहाड़ में पाये जाने वाले बहुमूल्य औषधीय पौधे एवं बाँस (*ड्रेड्रोक्लेमस स्ट्रिक्स*) जो कि अन्दर से ठोस होता है बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इस पहाड़ में तेदुआ जंगली सुअर, सिआर लोमडी, नीलगाय, मोर, हिरण, लकड़वाग्गा इत्यादि वन्यजीव भी पायें जाते है। पहाड़ को अभयारण्य घोषित करने के पीछे राज्य सरकार का उद्देश्य यहाँ की धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत के साथ-साथ यहाँ पायी जाने वाली, वनस्पतियों एवं वन्य प्राणियों का संरक्षण करना भी रहा हैं।

इस पवित्र पारसनाथ पहाड़ की वनस्पतियों के अध्ययन के उद्देश्य से ही भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के एक 5 सदस्यीय वैज्ञानिक दल ने इस अभयारण्य का दिनांक 27-10-04 से 9-11-04 तक सर्वेक्षण किया। वैज्ञानिक दल ने अपना प्रथम पडाव 'मधुवन' मे किया जो कि पहाड़ के तलहटी में बसा जैन जाति के श्वेताम्बर एवं पीताम्बर समुदायों का प्रमुख पवित्र स्थल है। दोनो समुदायो के क्ई भव्य मन्दिर एवं धर्मशालाये है जहाँ बडी संख्या में श्रद्धालु आकर विश्राम करते हैं। अधिकांश यात्री शिखर जी (भगवान पारसनाथ) की लगभग 28 कि० मी० की परिक्रमा एक दिन मे ही पूरी कर वापस चले जाते है। भगवान पारसनाथ (शिखर जी) का प्राचीन मन्दिर पहाड़ की चोटी (4480 फिट) पर स्थित है। यह मधुवन से पैदल मार्ग द्वारा 9 कि० मी० है किन्तु भक्तगण इस पहाड़ की 28 कि० मी० की परिक्रमा करते है जिसमे पारसनाथ के साथ-साथ अन्य 20 तीर्थंकर की भी परिक्रमा सम्मिलित होती है।

वैज्ञानिक दल का मात्र उद्देश्य अभयारण्य मे पाये जाने वाली वनस्पतियों का सर्वेक्षण करना था अतः दल ने एक स्थानीय मार्ग दर्शक की मद्द से अभयारण्य का सर्वेक्षण 29 अक्टूबर से प्रारम्भ किया। अभयारण्य की प्रवेश सीमा समुद्र तल से 1200 फिट है। इस उँचाई से लेकर 2000 फिट की उँचाई तक घने वन नहीं दिखते जिसका एक कारण आस-पास रहने वालेलोगों द्वारा अपने एवं जानवरों के लिए इनका दोहन किया जाना लगता है। 'कुर्थी बारी' (1800 फिट) नामक स्थान पर एक मन्दिर के निर्माण का कार्य भी चल रहा था जिसके निर्माण के लिए कुछ पत्थर भी इसी पहाड़ से खोदे जा रहे है जिसके कारण उस जमीन के आस-पास उगने वाले औषधीय पौधे *डायस्कोरिया*, (कन्द), *क्लोरोफाइटम* (सफेद मूसली), *यूलागो* (काली मूसली) आदि का क्षय हो रहा है। निरन्तर खुदाई के फलस्वरूप मृदा क्षय के कारण बडे वृक्ष भी इसकी चपेट में आ रहे हैं।

अभयारण्य में 3000 फिट की ऊचाई तक उष्ण पर्णपाती मिश्रित वन पाये जाते है जिनमे मुख्य वृक्ष *डिलिनिया पैटागायना, केडिया केलिसिना, फ्लेकोरटिया रेमोनचाई, इमविलका आफीसीलेलिस, हायमिनोडिक्टयान, जिजिफस जुजुबा, सेमीकार्पस सेनाकार्डियम, व्यूटिया मोनोस्पर्मा,बाहुनिया माल्वारिका, टर्मेलिया वलेरिका, टर्मेलियाचिबुला, टर्मेलिया अर्जुना, डायस्पायरास टोमेनटोसा,* एवं मुख्य शाकीय पौधे *थसपेसिया लमपस, हेलिकटेरिस आइसोरा, ग्रीवीया एशयाटिका, ब्राडिलिया, लीआ एसपारा, इसमोडियम गेन्जेटिकम, फ्लेमिन्जियाँ चापर, वुडफोरडिया फ्रूटीक्रेसा, पवेटा इंड़िका, न्यकटनथस आरवोर-ट्रिसट्रिस* तथा मुख्य लतायें *ओलेकस स्केंडंस, कॉमब्रीटम डीकेनडम, स्माईलैक्स शैक्सब्रगाई, माईलेटिया ओरिकुलेटा* इत्यादि पाये जाते है।

कुर्थी बारी से आगे शिखर जी की ओर जाने के मार्ग मे 'भाताघर' एवं 'शीतल नाला' नामक दो मुख्य पड़ाव पड़ते है जहाँ यात्री क्षणिक विश्राम करने के उपरान्त आगे बढ़ते है। वानस्पतिक दृष्टिकोण से शीतल नाला (3000 फिट) तक वनो मे कोई परिवर्तन प्रतीत नही होता किन्तु जंगल घने एवं वृक्षो की वृद्धि काफी अच्छी देखने को मिलती है।

शीतल नाला से मन्दिर के दर्शन के लिए एक रास्ता गौतम सारणी से होते हुए तथा दूसरा रास्ता डाक बंगला (4200 फिट) से होते हुए शिखर जी को पहुँचता है। शीतल नाला से पहाड़ की चढ़ाई खड़ी होने लगती है, यहाँ से मौसम भी परिवर्तित होने लगता है। जमीन एवं पौधो में नमी तथा वायु मे ठंड का अहसास होने लगता है। जँहा दूर-दूर तक घाटियो एवं चोटियों पर हरे-भरे सदाबहार वृक्ष दिखने लगते है वहीं वृक्षो के तनो पर तथा पत्थरो पर शैवाल, हरितोदभिद् एवं पर्णांग मिलने लगते है। इस क्षेत्र मे *वैन्डा, पेरिहायलिस* आर्किड तथा *पेपरोमिया, हेपटोफ्लूरोम, रुयूमोसेटिया* आदि जैसे सहजीवी पौधे भी मिलते है। शीतल नाला से पहाड़ की चोटी तक सदाबहार वन देखने को मिलते है जिनमे मुख्य वृक्ष *केलिकारपा आरबोरिया, लिटसिया पोलीएंथा, फाइकस कयूनिया, फाइकस रिटयूसा, क्रोटन आबलांगीफोलियस, गारडिनिया,* बिसकोफिया जेयलिनिका, एवं शाकीय पौधे *वेनगुरिया स्पाइनोसा, बोहमेरियापलेटीफाइला, सिम्पोलोकास रेसिमोसस, कोलोबेक्रिया अपोसिटिफोलिया* इत्यादि तथा लताओं में मुख्यतः *डायसकोरिया, स्माइलैक्स, पोरेना पानीकुलेटा एस्पेरेगस, मिजोनियोराम क्यूक्लेटम, बाहुनिया बहलाई* इत्यादि मिलते है।

अभयारण्य मे 4000 फुट के ऊपर शीतोष्ण वन के कुछ पौधे भी मिलते है जिसमे मुख्य *जिरेनियम, क्लेमेटिस,* थेलिकट्रम, रेनवाडिटिया, पोलिगेला ट्राईफला, बरबेरिस एशियाटिका इत्यादि है।

चोटी तक पहुँचने मे साधारणतया लगातार चलते रहने से 3 घंटे लग जाते है किन्तु हमारा दल वनस्पति नमूने एकत्र करते हुए 6 घंटे मे डाक बंगला तक पहुँचा। यह डांक बंगला बहुत पुराना लेकिन सुव्यवस्थित है जिसमे सन् 1848 मे पारसनाथ की वनस्पति सर्वेक्षण के दौरान सर जे० डी० हुकर ठहरे थे।

प्रस्तावित योजना के तहत डाक बंगले में 5 दिन ठहर कर दल के सदस्यो ने पहाड़ की चोटी तथा आस-पास के क्षेत्रो का सर्वेक्षण किया। इस सर्वेक्षण के अन्तर्गत अपुष्पी पौधो से लेकर पुष्पी पौधो के लगभग 200 नमूने का एकत्रीकरण किया गया और उसी रास्ते से होकर वापस कैम्प (मधुबन) लौट आये।

- ऐसी उन्नति से क्या लाभ।
  जीवन हो जाये अभिशाप।। –(अनुराधा पांडेय)

- प्रदूषण से मुक्ति पाने का कीजिए दृढ संकल्प।
  जगह जगह पर वृक्ष लगाकर कीजिये कायाकल्प।।
  –(रमेश चन्द्र जांगेड)

- वृक्ष लगाओ, वृक्ष लगाओ।
  ठीक समय पर बारिश पाओ।। –(रामसेवक शर्मा)

- प्रदूषित जल, भोजन और वायु।
  करते कम मानव की आयु।। –(राम सेवक शर्मा)

अरूणाचल प्रदेश के कुछ दुर्लभ औषधीय शाक

अनंत कु० बैश्य एवं रितेश कु० चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

अरूणाचल प्रदेश, भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में अवस्थित एक ऐसा राज्य जिसे प्रकृति ने अत्यंत महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान उद्भिदों से आभूषित किया है। विभिन्न प्रकार की भू-आकृतियों एवं परिवर्तनशील जलवायु युक्त इस प्रदेश की वसुंधरा वैज्ञानिकों के द्वारा भी ''जैव विविंधता की उत्तप्त स्थली'' के रूप में चिन्हित की गई है। यहाँ की वन-संपदा विभिन्न प्रकार के औषधीय, काष्ठोत्पादक, सजावटी एवं विलक्षण प्रकृति के पौधों से परिपूर्ण है तथा इनमें से कई पौधे विरल एवं स्थानिक प्रकृति के भी हैं। यहाँ की धरती कई ऐसे दुर्लभ औषधीय पौधों की जननी हैं जो न सिर्फ सीमित उपलब्धता बल्कि विलक्षण रासायनिक प्रकृति के कारण भी विशिष्ट हैं। परंतु दुर्भाग्यवश पिछले कई वर्षों में आर्थिक लाभ हेतु किए गए अंधाधुंध दोहन के परिणामस्वरूप इनके अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो गया है। अतः वर्ष 1994 में अमेरिका में संपन्न ''संकटग्रस्त जन्तु एवं वनस्पति जातियों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी-समझौता'' (साइटेस) में इन पौधों को वैज्ञानिकों ने परिशिष्ट I तथा II में शामिल किया है ताकि इनके अनावश्यक दोहन को प्रतिबंधित किया जा सके।

यहाँ कुछ ऐसे ही दुर्लभ औषधीय शाकों की विवेचना की जा रही है जो साइटेस के परिशिष्ट I या II में शामिल हैं। ये सभी शाक भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर के सर्वेक्षण के परिणाम स्वरूप अरूणाचल प्रदेश के कुछ शीतोष्ण, उप-हिमाद्रि या हिमाद्रि वनों से युक्त क्षेत्रों जैसे – लोहित, कुरूंगकुमे, कामेंग, तवांग आदि से संकलित किए गए है।

उपरोक्त क्षेत्रों के दीर्घकाल तक हिमाच्छादित रहने के कारण यहाँ पाए जानेवाले इन औषधीय शाकों की जीवन-अवधि एक छोटे अंतराल तक ही सीमित होती है परंतु अपनी जड़ों के बहुवार्षिक प्रकृति की कारण यह अपने अस्तित्व की रक्षा कर पाते है।

यह भी एक धातव्य तथ्य है कि निम्नलिखित कुछ पौधों का वितरण पहले सिर्फ सिक्किम तक ही सीमित माना जाता रहा था परंतु भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर के अभिनव सर्वेक्षणों के परिणाम स्वरूप इन्हें अरूणाचल प्रदेश में भी पाया गया है। निष्कर्षतः अरूणाचल प्रदेश को इन पादपों की पूर्वीपरिसीमा माना जा सकता है। यह भी आशा की जाती है कि भविष्य में होनेवाले सर्वेक्षणों में ये पौधे यहाँ के कुछ समान तुंगता वाले क्षेत्रों जैसे–दिवांग घाटी, लोहित आदि से भी प्राप्त हो सकते हैं।

(1) पिकरोराइजा कुरोआ :

स्क्रेफुलेरिएसी परिवार का यह पौधा यहाँ के उच्च तुंगता वाले क्षेत्रों जैसे–तवांग, कुरूंगकुमे आदि में पाया जाता है। जनसाधारण के बीच 'कुटकी' नाम से ज्ञात यह एक छोटा, रोआँदार बहुवार्षिक शाक है जिसके प्रकन्द को मुख्यतः औषधि के रूप में व्यवहार में लाया जाता है। इसमें पाए जाने वाले प्रमुख रासायनिक अवयव जैसे–कुटकीन, कुरीन, कुटकिऑल आदि मुख्यतः यकृत में उत्पन्न विकारों के निवारण में सहायक सिद्ध हुए परंतु इसके अलावा ये अनेक प्रकार की शारीरिक व्याधियों जैसे–कफ तथा पित्त दोष, चर्मरोग, मधुमेह तथा कब्ज आदि से मी मुक्ति दिलाते है।

(2) रियम इमोडी

पॉलीगोनेसी परिवार का यह बहुवार्षिक शाक अत्यंत लंबी जड़ (1 से 15 मीटर) से युक्त होता है

तथा जनसाधारण के बीच रूबर्ब, दोलू या दोलेर नाम से जाना जाता है। यह पौधा यहाँ के उप-हिमाद्रि वनों से युक्त प्रदेशों जैस–तवांग, कुरूंगकुमे आदि में पाया जाता है। क्रायसोफेनिक अम्ल, इमोडीन, रहीन तथा अन्य कई विशिष्ट रासायनिक अवयवों से युक्त इस पौधे की जड़ को कई प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियों में प्रयोग किया जाता है जो कई प्रकार की शारीरिक व्याधियों जैसे–पेट दर्द, टॉसिलाइटिस, खसरा तथा मांसपेशियों के सूजन आदि में रामवाण की तरह कार्य करती हैं।

(3) **कॉप्टिस टीटा** :

यह रैननकुलेसी परिवार का एक प्रकन्दयुक्त बहुवार्षिक शाक है जो यहाँ के उपोष्णकटिबंधीय वनों से लेकर उपहिमाद्रि वनों जैसे–बॉमडिला, सेपा, सियांग आदि में पाया जाता है। जनसाधारण के बीच 'गोल्ड थ्रेड' या 'मिशिमी टीटा' के नाम से ज्ञात इस पौधे के प्रकन्द को औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। उसमें पाए जाने वाले प्रमुख रासायनिक अवयव कॉप्टीन, कॉप्टिसीन तथा जैट्रो राइजीन हैं जो नेत्रदोष, कफ तथा पित्तदोष, कृमिरोग, मधुमेह, बुखार, सफेद दाग तथा मलेरिया के निवारण में अत्यंत प्रभावकारी हैं।

(4) **एकोनीटम फेरॉक्स** :

यह रैननकुलेसी परिवार का एक अत्यंत दुर्लभ बहुवार्षिक शाक है जिसकी जड़े कन्दनुमा होती हैं। यह पौधा यहाँ के उपहिमाद्रि एवं हिमाद्रि वनों में पाया जाता है। इसकी भूमिगत जड़ एवं तने की विषाक्त प्रकृति के कारण इसे साधारणतया 'विष' या 'बच्चानाग' के नाम से भी जाना जाता है। इस पौधे से प्राप्त कुछ अल्कलॉयड जैसे–स्यूडएकोनाइटीन, कैस्माकोनाइटीन आदि कई प्रकार की औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त होते है जो कंठ-विकार, नासिका विकार, लकवा तथा गठिया जैसे रोगों में अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध हुए हैं।

इसके अलावा इस पौधे की एक और प्रजाति *'एकोनीटम हेटेरोफाइलस* वाल. एक्स रॉयल' भी औषधीय दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ हैं। तवांग, कुरूंगकुमे आदि क्षेत्रों में पाया जानेवाला यह पौधा साधारणतः 'आतिस-जड़'के नाम से जाना जाता है। इसकी जड़ों से प्राप्त अल्कलॉयड 'आतिसीन' मुख्यतः बच्चों में होनेवाली बीमारियों के लिए प्रयुक्त होता है परंतु साथ ही यह मलेरिया अतिसार, कृमि रोग जैसी व्याधियोंके उपचार में भी प्रभावकारी हैं।

(5) **नार्डोस्टैकिस जटामाँसी**

जनसाधारण में 'जटामाँसी' के नाम से ज्ञात वैलेरिनेसी परिवार का यह शाक अरूणाचल प्रदेश के 3300-5000 मी० की ऊँचाई वाले हिमाद्रि वनों जैसे–तवांग, सेपा आदि में पाया जाता है। औषधीय दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण इस पौधे के प्रकन्द तथा उससे निकलने वाले तेल को औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता हैं। उसमे पाए जाने वाले रासायनिक तत्वों में जटामॉसिक अम्ल तथा जटामाँसोन सेमीकार्बाजोन प्रमुख है जो मुख्यतः बालों की सुंदरता बढाने में अत्यंत प्रभावकारी हैं। इसके अलावा अनिद्रा, सिरदर्द, हिस्टीरिया तथा मासिक धर्म संबंधी समस्याओं के निवारण हेतु भी इनका उपयोग किया जाता है।

(6) **पैनेक्स स्यूडो-जिनसेंग**

अपनी विलक्षण रासायनिक प्रकृति मे कारण यह पौधा पिछले कुछ वर्षो से 'भारतीय वियाग्रा' की खोज में लगे शोधकर्ताओं के आकर्षण का प्रमुख केंद्र बना हुआ है। यहाँ के कामेंग, सुबानसीरी तथा तिराप जिलों के उपोष्ण कटिबंधीय वनों में पाया जानेवाला अरालिएसी परिवार का यह छोटा एवं बहुवार्षिक शाक प्रकन्दयुक्त होता है। इसमें पाएजानेवाले प्रमुख रासायनिक अवयवों में ट्राइटर्पेनॉइड सैपोनिन, ओलिनोलिक अम्ल एवं कई अन्य अमीनो अम्ल शामिल हैं। इसके प्रकन्द का व्यवहार मुख्यतःएक स्फूर्तिदायक पेय बनाने

में किया जाता है जो शरीर के विभिन्न हार्मोनों एवं रक्त संचालन की प्रक्रिया को संतुलित करता है। इसके अलावा नपुंसकता, अनीमिया, गठिया, नाक से खून आना तथा गर्भाशय विकारों को दूर करने में भी प्रभावकारी है।

(7) **फ्रिटिलेरिया सिरोसा** :

लिलिएसी परिवार का यह शाक साधारणतः 'याथु' नाम से जाना जाता है जिसके कंद लहसुन के कंद के समान होते हैं। यह यहाँ के पश्चिमी कामेंग तवांग, लोहित आदि के 2000-4000 मी. की उँचाई वाले वनों में पाया जाता है। क्षय-रोग, ब्रोंकाइटिस तथा अस्थमा में औषधि के रूप में प्रयुक्त इस पौधे के चार अन्य प्रभेद चीन में पाए जाते हैं।

(8) **पोडोफाइलम हेक्सैन्ड्रम**

यह पोडोफाइलेसी परिवार का एक छोटा शाक है जिसकी जड़े शल्कयुक्त एवं प्रकन्दनुमा होती है। यह पौधा यहाँ के तवांग, कामेंग आदि क्षेत्रोंमें पाया जाता हैं। साधारणतया 'पापरा' के नाम से ज्ञात इस पौधे के प्रकन्द से 'पोडोफाइलिन' नामक रेजिन प्राप्त होता हैं जो फेफड़े एवं वृषण के कैंसर की चिकित्सा में प्रभावकारी सिद्ध हुआ है अतः इस पौधे की भविष्य की उपादेयता की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

इसके अलावा इस पौधे की एक अन्य प्रजाति *पोडोफाइलम, सिक्किमेन्सिस* चटर्जी व मुखर्जी भी औषधीय दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ है। इस पौधो का निवास पहले सिर्फ सिक्किम माना जाता था परंतु हाल ही में इसे भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर के द्वारा अरूणाचल प्रदेश की ताले-घाटी से भी खोजा गया है। नृ-जातियों के द्वारा विभिन्न शारीरिक व्याधियों के शमन हेतु प्रयुक्त इस पौधे की रासायनिक प्रवृत्ति अभी पूर्ण रूपेण ज्ञात नहीं है बल्कि इसपर अतिरिक्त शोधकार्य वांछनीय हैं।

(9) **स्वेरशिया चिरायता**

जेंसियानेसी परिवार का यह शाक साधारणतः 'चिरायता' के नाम से जाना जाता है तथा यहाँ के शीतोष्ण से लेकर हिमाद्रि वनक्षेत्रों तक पाया जाता है। इसमें पाए जाने वाले प्रमुख रासायनिक अवयव ओफेलिक अम्ल, चिरातीन, स्वेंटिनीन आदि हैं जो रक्तशोधक, कफ एवं पित्त दोषहारी, यकृतदोष नाशक आदि की तरह कार्य करते हैं।

(10) **सॉस्यूरिया ओवेलाटा**

'ब्रह्मकमल' के नाम से विख्यात एस्टेरेसी परिवार का यह पौधा न सिर्फ औषधीय बल्कि धार्मिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। हाल ही में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर ने अपने तवांग क्षेत्र के सर्वेक्षण के दौरान इसकी दो अन्य प्रजातियाँ *एस. सिम्पसोनिया* एवं *एस गॉसिपीफोरा* भी प्राप्त की हैं। इस पौधे से प्राप्त अल्कलॉयड 'सॉस्यूरीन' औषधीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है जो चर्म-व्याधियों, बुखार, सर्प-विष तथा दाँत-दर्द आदि के शमन में प्रभावकारी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त पौधे अत्यन्त मानवोपयोगी हैं। परंतु आज आवश्यकता इस बात की है कि इनके संरंक्षण हेतु सार्थक चहुँमुखी प्रयास किए जाएँ। हालाँकि इन पौधों का साइटेस के परिशिष्टों में शामिल करना भी एक महत्वपूर्ण कदम है तथा सरकार द्वारा अरूणाचल प्रदेश में किए गए संरक्षण प्रयासों में सेसा (पश्चिमी कामेंग) में ऑर्किड अभयारण्य की स्थापना, टीपी (प० कामेंग) में ऊतक संवर्धन कार्यक्रम, राज्य वन संस्थान, ईटानगर, पूर्वोत्तर क्षेत्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, निर्जुली एवं भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर आदि में किए जा रहे शोधकार्य भी महत्वपूर्ण हैं। परंतु अरूणाचल प्रदेश की विशाल

वन–संपदा की तुलना में ये प्रयास पर्याप्त प्रतीत नहीं होते हैं। अतः शीघ्रातिशीघ्र अतिरिक्त प्रयासों जैसे–सभी औषधीय पौधों की सही पहचान एवं उसका वर्गीकरण, उनकी रासायनिक प्रकृति का ज्ञान, जर्मप्लाज्म परिरक्षण तथा स्वस्थानें परा स्थाने परिरक्षण आदि की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि जनसाधारण को भी इन प्रयासों का एक महत्वपूर्ण अंग बनाया जाय। अरूणाचल प्रदेश की विभिन्न नृ-जातियाँ जिन्हें औषधीय पौधों के ज्ञान का चलता फिरता शब्दकोष' भी कहा जाता है, के विशिष्ट ज्ञान को समाज कल्याण हेतु प्रयोग करने एवं वैज्ञानिकों के साथ एक सही समझ विकसित करने से इन दुर्लभ औषधीय पौधों का संरक्षण अवश्य हो पाएगा, इसमें कोई संशय नहीं।

- खेलो खाओ, जाओ स्कूल।
  सींचो पौधे, तोड़ो न फूल।। –(रामेश्वर उपाध्याय)

- कटते जंगल बढ़ती आबादी।
  पर्यावरण की हैं बरबादी।। –(विमल प्रसाद)

- वृक्षारोपण धर्म महान।
  एक पेड़ सौ पुत्र समान।। –(शेखर गिरी)

भारत में कैरेक्स वंश (मोथा कुल-साइपेरेसी) की जातीय विविधता एवं विविध उपयोग

आर० सी० श्रीवास्तव एवं रूचिरा कनौजिया
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
इलाहाबाद

सर कार्ल वा लीनियस द्वारा १७५३ में स्थापित कैरेक्स वंश एकदलीय पौधों के मोथा कुल (साइपेरेसी कुल) का सदस्य हैं। लेखकों द्वारा वर्तमान में किए जा रहे शोध कार्य के पश्चात यह पाया गया है कि वर्तमान भारतवर्ष की सीमाओं के अन्तर्गत १४६ जातियाँ, ७ उपजातियाँ, ३२ भेद एवं ८ उपभेद (फार्मा) अभी तक खोजे जा चुके हैं। इस वंश की प्रजातियाँ शीतोष्ण स्थानों पर अधिक है परन्तु उत्तर प्रदेश बिहार इत्यादि समतलीय स्थानों पर भी कुछ जातियाँ जैसे *कैरेक्स फेडिया, कैरेक्स फिलिसिना, कैरेक्स फैकाटा, कैरेक्स ब्रुसिआटा, कैरेक्स मायोसुरस* व *कैरेक्स हेटेरोस्टेक्स* नम भूमि में पाई जाती हैं। कई प्रजातियाँ तो अत्यन्त दुर्लभ हैं और कुछ विभिन्न क्षेत्रों तक सीमित हैं, उदाहरणार्थ-*कैरेक्स असरोई* नामक प्रजाति भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के विशेषज्ञ डा० दिनेश मोहन वर्मा को नागालैण्ड में प्राप्त हुई। यहाँ के अतिरिक्त इसे कहीं नहीं देखा गया। इसी तरह *कैरेक्स बाइगेलोवी, कैरेक्स फैस्टीगाटा, कैरेक्स लीनिएसिस*, भेद इलैकिस्टा तथा कैरेक्स मान्टिस-एवरेस्टी नामक प्रजातियाँ अभी तक मात्र सिक्किम राज्य से ही संकलित की जा सकी हैं। *कैरेक्स बैकेन्स* भेद *सिस्सीप्रक्टस, कैरेक्स कम्पोजिटा फार्मा* सिम्पलीसियोर तथा कैरेक्स डेस्पान्सा उपप्रजातियाँ केवल मेघालय में पाई जाती हैं। इसी तरह *कैरेक्स कन्टीन्युआ* तथा *कैरेक्स स्पेसिओसा* उपजाति *डाईएलाटा*, पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले तक ही सीमित है। इस तरह की प्रजातियों में दो और नाम हैं जैसे *कैरेक्स नायराई* अभी तक मात्र काश्मीर से एकत्र की गई है एवं *कैरेक्स जैकियाना* भेद *माइनर* तमिलनाडु राज्य के नीलगिरी पहाड़ियों में ही पाई जाती हैं।

इस वंश के पौधों पर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पूर्वोत्तर भारत से प्रमुख कार्य डा० दिनेश मोहन वर्मा का था जो ''साइपेरेसी आफ नार्थ इस्टर्न इण्डिया'' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ तथा पूर्वोत्तर हिमालय में स्थित भारत के सिक्किम राज्य में पाई जाने वाली इस वंश की प्रजातियों का विवरण भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की सिक्किम शाखा के तत्कालीन प्रभारी डा० आर० सी० श्रीवास्तव द्वारा ''फ्लोरा ऑफ सिक्किम खण्ड एक–मोनोकाट्स'' में प्रकाशित किया गया। अभी हाल (२००४) में वी. पी. सिंह एवं आर. सी. श्रीवास्तव के द्वारा उत्तर-प्रदेश राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत ६ जातियाँ खोजी गई।

वैसे तो इस कुल के सदस्यों को साधारणतया घास-फूस कहकर टाल दिया जाता है तथा इनके रासायनिक अवयवों एवं उपयोगों पर बहुत कम काम हुआ है। इस वंश के अन्य वंशों के अनेक पौधों के अनेकानेक उपयोग वर्णित हैं उन्ही के साथ इस वंश की कुछ जातियों के उपयोग भी वर्तमान अध्ययन के दौरान प्रकाश में आए।

'कैरेक्स' वंश की *कैरेक्स बैकेन्स* प्रजाति के फल जिन्हें तकनीकी भाषा में *'नट'* कहा जाता है। गोलाकार तथा भूरे या गहरे लाल रंग के होते हैं जो गुच्छों में होने के कारण दूर से ही पहचान में आ जाते हैं एवं अत्यंत लुभावने लगते हैं। डा० आर० सी० श्रीवास्तव ने इस जाति का उपयोग एक अति सुन्दर बोनसाई बनाने में भी किया है।

'कैरेक्स' की कुछ अन्य जातियाँ गमलों में या जलीय उद्यानों में भी लगाई जाती हैं। भारत में तो नहीं परन्तु यूरोपीय देशों में *कैरेक्स ब्रिजायडिस* का तना व पत्तियाँ पैकिंग के काम आती हैं। इसके अतिरिक्त *कैरेक्स*

पैनीकुलाटा व *कैरेक्स राइबेरिया* का उपयोग घोड़ों के अस्तबल में पुवाल के स्थान पर किया जाता है। जापान में *कैरेक्स डिस्पलाना* की खेती होती है व इसकी पत्तियों का ''*हैट*'' बनाने में उपयोग किया जाता है। अमेरिका में कैरेक्स इप्यूसम को ''*सा ग्रास*'' कहते हैं तथा इसके तने का उपयोग कागज बनाने में किया जाता हैं।

- नंगी धरती करे पुकार।
  वृक्ष लगाकर करो शृंगार।। –(मनोज कु. सिंह)

- प्राण-वायु के हैं वृक्ष आधार।
  करें न हम इनका, निर्मम संहार।। –(सुरेश चन्द्र शर्मा)

- पर्यावरण, प्रकृति की जान।
  बनाये रखना, इसकी शान।। –(राजेश मोहन)

- रोटी, कपड़ा और मकान।
  सबको दाना, वन महान।। –(विजय गुप्ता)

अरूणाचल प्रदेश के कुछ विषैले पौधे

हिमांशु शेखर महापात्र एवं रितेश कु० चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

प्रकृति में पाए जानेवाले विभिन्न पौधे विभिन्न रूपों से मानव को प्रभावित करते हैं। कुछ पौधे तो मानव जीवन के लिए इतने उपयोगी हैं कि उनके बिना एक सचल जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती, परंतु कुछ पौधे ऐसे हैं जिनसे मानव जीवन प्रतिकूल स्वरूप में प्रभावित होता है। सीधे शब्दों में कहें तो ये पौधे अपनी विशिष्ट जहरीली रासायनिक प्रकृति से मानवीय अस्तित्व पर खतरा उत्पन्न कर सकते हैं।

अरूणाचल प्रदेश, जो पूर्वोत्तर भारत का विशालतम राज्य है तथा विशिष्ट वानस्पतिक संपदा से सुसज्जित है ; इस प्रकार के अनेक विषैले पौधों का भंडार-गृह है। ये पौधे हालाँकि अपनी प्रकृति में विषाक्त तो हैं परंतु यहाँ के निवासियों को अनेक दृष्टिकोणों से लाभ भी पहुँचाते हैं। यहाँ की विभिन्न नृ-जातियाँ, जो अपनी जीविका हेतु विभिन्न जंतुओं के शिकार पर निर्भर करती हैं, इन जहरीले पौधों का उपयोग अपने तीर को विषैला बनाने तथा मछलियाँ मारने हेतु भी करते हैं।

कुछ ऐसे ही जहरीले पौधे जो अरूणाचल प्रदेश में प्राकृतिक अवस्था में पाए जाते हैं एवं जिनमें उपस्थित विषैले रसायन मनुष्य के जीवद्रव्य पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करते हैं एवं जिनके सेवन से प्राणी की मृत्यु तक हो सकती है, की जानकारी नीचे दी जा रही हैं :–

1. एकोनीटम बिस्मा

रैननकुलेसी कुल का यह एक छोटा एवं रोआदार शाक है जो यहाँ के कामेंग, लोहित, सिपांग जिलों में पाया जाता हैं। इस पौधे के जड़ एवं कंद का लेप यहाँ के आदिवासियों द्वारा अपने तीरों को विषैला बनाने हेतु किया जाता है जो इतना विषैला होता है कि किसी हाथी को भी मार गिराने में सक्षम होता है।

2. एकोनीटम नैगेरम

यह भी रैननकुलेसी कुल का एक शाक है जिसकी पत्तियाँ रोएँदार होती है। यह यहाँ के कामेंग जिले में पाया जाता है तथा इसकी जड़ों का लेप भी तीरों को विषैला बनाने हेतु किया जाता है।

3. एकेसिया पिन्नाटा

मिमोसेसी कुल का यह एक काँटेदार एवं आरोही पौधा है जो यहाँ जनसाधारण के बीच 'तातकुंग' या 'कुचाई' नाम से जाना जाता है। यह मुख्यतः सियांग जिले में पाया जाता है तथा इसके छाल का उपयोग मछलियों को मारने के जहर के रूप में किया जाता है।

4. एकेसिया रूगाटा

यह भी मिमोसेसी कुल की ही एक काँटेदार झाड़ी है जो जनसाधारण के बीच 'पसोई टेंगा' या 'आमसिकरा' के नाम से जानी जाती है। इसे यहाँ के सुबानसीरी जिले में पाया गया है। इसके तने के चूर्ण का उपयोग मछलियों को मूर्छित कर पकड़ने हेतु किया जाता है।

5. कैनेरियम स्ट्रिकटम

साधारणतया 'सीलम-पकिया' या 'धूना' नाम से जाना जानेवाला बर्सिरेसी कुल का यह एक विशाल

वृक्ष है। इसकी पत्तियों के चूर्ण का उपयोग भी यहाँ के लोगों द्वारा मछलियों को मूर्छित कर पकड़ने हेतु किया जाता है। यह यहाँ के सियांग तथा तिराप जिलों में पाया जाता हैं।

6. मिल्लेशिया पैकिकार्पा

यह फैबेसी कुल का एक आरोही पौधा है जो यहाँ के चांगलांग, तिराप, सियांग तथा सुबानसीरी जिलों में पाया जाता है तथा 'हापुलिंग' या 'बोकोआ-बिह' के नाम से जाना जाता है। इस पौधे के फल एक से तीन बीजों से युक्त होते हैं, तथा जड़ जहरीले होते हैं। इनका उपयोग भी मछलियों को पकड़ने हेतु किया जाता हैं।

7. ट्रेवेसिया पामाटा

अरालिएसी कुल का यह झाड़ीनुमा पौधा यहाँ के सुबानसीरी जिले मे पाया जाता हैं। इसे यहाँ 'तागो' या 'भोतोला' के नाम से जाना जाता है। इसके फल विषाक्त प्रकृति के होते हैं जिनका उपयोग मछलियों को मूर्छित कर पकड़ने में किया जाता हैं।

8. ज़ेराँम्फिस स्पाइनोसा

यह रूबिएसी कुल का एक मध्यम उँचाई वाला वृक्ष है। इसके छोटे, गोल, पीले एवं विषाक्त सरसफलों का उपयोग भी मछलियाँ पकड़ने हेतु किया जाता है। यह यहाँ के कामेंग जिले में पाया जाता है तथा साधारणतया 'बेहमोना' या 'मोन' के नाम से जाना जाता है।

9. मेसुआ असामिका

साधारणतया 'सिया-नाहर' नाम से ज्ञात क्लूसिएसी कुल का यह एक मध्यम ऊचाई वाला वृक्ष है। इसके फल गोलाकार तथा अवनमित होते हैं जो ज़हरीले होते हैं। इनका उपयोग भी मछलियों को पकड़ने हेतु किया जाता है। यह यहाँ के कामेंग, सियांग एवं सुबानसीरी जिलों में पाया जाता हैं।

10. ज़ैन्थोज़ाइलम निटिडम

यह रूटेसी कुल की एक आरोही झाड़ी है जिसके पुष्प मटमैले सफेद तथा फल गोलाकार होते हैं। इन फलों की प्रकृति जहरीली होती है जिसका उपयोग मछलियों को पकड़ने में किया जाता हैं। यह यहाँ के सियांग जिले में पाया जाता है तथा जनसाधारण के बीच 'तेजमाइ-विह' के नाम से जाना जाता हैं।

- जितने वृक्ष लगाओगे।
  उतना जीवन पाओगे।। —(इन्दु गुप्ता)
- वृक्ष सुखद जीवन आधार।
  रोको इन पर अत्याचार।। —(शुभ्रा रंजन)
- काटोगे यदी हरी डाल।
  सांसो से होगे कंगाल।। —(वीणपाणि जोशी)

अपर सुबनसिरी जिले के वन एवं वनस्पतियाँ : एक अवलोकन

कुमार अम्बरीष एवं ए. के. वैश्य
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

प्रकृति की संसार को अनेको देनों में वन वनस्पतियाँ एवं नदियों का विशिष्ट स्थान है जिनसे समस्त जीव धारियों का भरण पोषण आदिकाल से होता आ रहा है। इन्हीं वन, वनस्पतियों और नदियों से समृद्ध भारत का पूर्वोत्तरप्रदेश ''अरूणाचल'' विश्व में एक विशिष्ट स्थान रखता है। तिब्बत से निकली विशाल नदी ''सुबनसिरी'', जो उत्तर की दिशा से अरूणाचल प्रवेश करते हुए दक्षिण को ओर ब्रहमपुत्रा नदी में समायोजित होती है। इसी नदी के नाम पर ''सुबनसिरी'' जिले की स्थापना हुई थी जिसे सन् 1984 में ऊँचाई एवं भौगोलिकी के आधार पर दो भागों–अपर सुबनसिरी एवं लोअर सुबनसिरी में विभक्त किया गया।

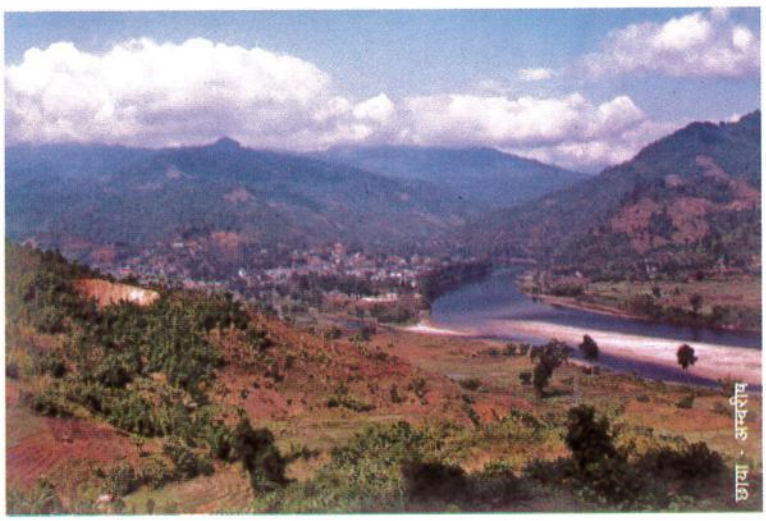

सुबनसिरी नदी के तट पर बसा जिले का मुख्यालय दापोरिजो

मुख्य सड़क मार्ग से जुड़ा जिले का अंतिम सर्किल क्षेत्र लिमिकिंग

अपर सुबनसिरी जिला 27°45-28°47 उत्तरी अक्षांश और 94°42-95°-35 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है जिसका कुल क्षेत्रफल 7032 वर्ग कि. मी. है। इसके पूर्व में वैस्ट सिंयाग, पश्चिम में कुरूंगकुमे एवं लोअर सुवनसिरी, दक्षिण में वेस्ट सियांग एवं लोअर सुबनसिरी व उत्तर में चीन (तिब्बत) स्थित है। दापोरिजो जिले का मुख्यालय है जो प्रदेश की राजधानी इटानगर से लगभग 390 कि. मी. की दूरी पर स्थित है जो पूर्णतः पर्वतीय क्षेत्र है जिसमें कम ऊँचाई वाले पहाड़ी से लेकर अधिक ऊँचाई वाले पहाड़ (300-3500 मी.), घाटियाँ, नदियाँ एवं सुन्दर झरने हैं। अतः उपरोक्तानुसार यहाँ के वन एवं वनस्पतियों में भी प्रचुर विविधता है। दापोरिजो, जिले का सर्वाधिक समतल एवं निम्न ऊचाई (लगभग 350 मी.) वाला क्षेत्र है जबकि टॉकसिंग जो चीन सीमा के समीप है (ऊँचाई लगभग, 3000 मी.) सबसे अधिक ऊँचाई वाला सर्किल क्षेत्र है।

यहाँ की मुख्य जातियाँ निशी, तागिन आदि है जिनमें निशि पुचिगाको, बाजा एवं मुरूमुगली क्षेत्र में, आदि दापोरिजों क्षेत्र में व तागिन तालिहा, सियुम एवं लिमिकिंग क्षेत्रों में वास करते है। कृषि में विशेषकर झूमखेती है जिसमें धान, मंडुआ, दालें एवं मक्का प्रमुखः है। पशुपालन, जिसमें सूअर, मुर्गी, बत्तख, खरगोश एवं अर्धपालतू जानवर मिथुन सम्मलित है। अपने दैनिक जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिये ये जंगलों पर भी निर्भर करते है जिसमें शिकार, जंगली सब्जियाँ, औषधियाँ, चारा एवं जलावन की लकड़ी आदि प्रमुखः है। जिले में तागिन बाहुल्य क्षेत्र अधिक होने के कारण स्थानीय भाषा तागिन का प्रचलन अत्यधिक है। नयी पीढ़ी के लोग हिन्दी बोलने एवं समझने में सक्षम है। लेकिन दूरस्थ क्षेत्रो में बसे पुरानी पीढ़ी के लाग अक्षम ही प्रतीत होते है।

ग्राम ओरक के तागिन जन जातिय लोग

भौगोलिक संरचना :

अपर सुबन सिरी जिले की संरचना निम्न एवं उच्च, खड़े (स्टीप) पहाड़ों (ऊँचाई 700-18000 फीट) एवं विशाल घाटियों में सन्नहित है। उत्तरी दिशा में उच्च हिमालयी श्रृखलाएँ है जो तिब्बत (चीन) से भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा का निर्धारण करती है। यहाँ पर उप हिमाद्रि एवं हिमाद्रि प्रकार के वन पाये जाते है। दक्षिण की ओर जैसे-जैसे ऊँचाई कम होती जाती है कच्चे मिटटी के पहाड़ (यंग अनस्टेबल माऊन्टेन) दिखाई देते हैं। जिन पर उप सदाबहार एवं सदाबहार वनों (सेमी एवर ग्रीन एवं एवर ग्रीन) का मिश्रण देखने को मिलता है। वर्ष में अधिकांशतः वर्षा के कारण भूस्खलन (लैंडस्लाइड) यहाँ की प्रमुख समस्या है। वर्षाकाल में मुख्य मार्ग बाधित रहते है एवं दूरदराज के निवासियों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यहाँ नदियों में सुबनसिरी एवं सहायक नदियाँ जैसे सिगिन, सिप्पी, कमला, सियुक एवं मेंगा आदि पूर्व एवं पश्चिम से होकर दक्षिण की ओर बहती हैं। इन्ही नदियौं के वहाव पर नेपको एवं एन. एच. पी. सी. की क्ई छोटी एवं बड़ी जल विद्युत परियाजनायें क्रियान्वित हो रही है।

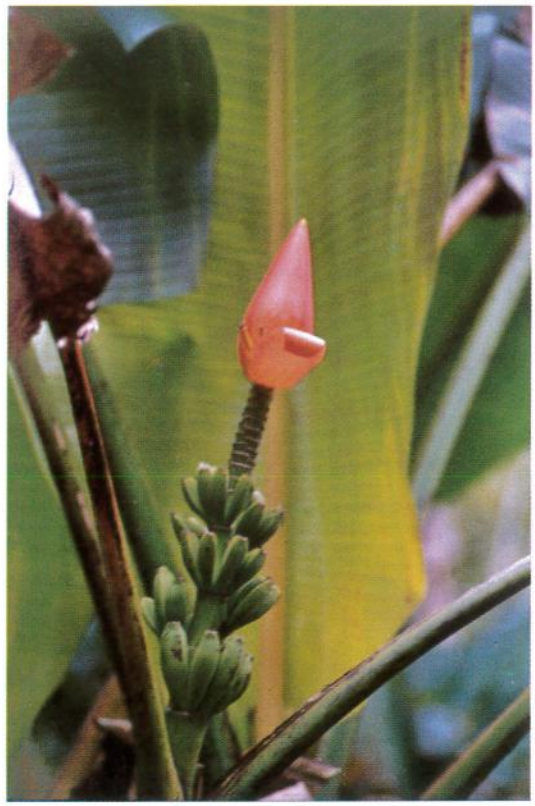

म्यूसा वेलूटिना

जलवायु एवं मिट्टी :

अपर सुबनसिरी में ऊँचाई एवं भौगोलिक क्षेत्र में परिवर्तन के साथ मौसम भी भिन्नता लिये हुये है। निचले क्षेत्रों जैसे दापोरिजो, मुरूमुगली, डाकपे, तालिहा मेंगा, दम्पोरिजो आदि में मौसम तीन प्रकार का होता है। जिसमें गर्मी, बरसात एवं सर्दी होती है। लेकिन प्री-मानसन के कारण वर्षा अत्यधिक होती है। अतः गर्मी का मौसम केवल अप्रैल एवं मई में ही देखने को मिलता है। जिसमें अधिकतम तापमान 36-37° से. ग्रे. से अधिक नही जाता है। तत्पश्चात जून से अक्टूबर नवम्बर तक बरसात एवं दिसम्बर से फरवरी अत्यधिक सर्दी होती है। उत्तरी पहाड़ियों में वर्ष भर मौसम ठंडा रहता है। यहाँ के अंतिम सूदूरवर्ती सर्किल ठाँकसिंग, जाने के लिये मुख्य सड़क से करीब 7-8 दिन लगते है, सर्दियों में बर्फ से ढका रहता है एवं इन दिनों यहाँ का ताप मान शून्य से भी नीचे चला जाता है। यहाँ की मिट्टी अम्लीय एवं दोमट बालुई है जिसमें अधिक ह्यूमस के कारण मिट्टी की उपजाऊ क्षमता काफी अच्छी है। इन्ही कारणों से यहाँ पर अच्छी कृषि के साथ नाना प्रकार के फल वृक्ष जैसे संतरा, सेब, नीबू, पुलम, नाशपाती केला आदि तथा जंगली फलों वाली क्षुप, शाक एवं आरोही लताएँ बहुलता में पायी जाती है।

छाया - अम्बरीष

म्यूसा सिक्किमेंसिस

वानस्पतिक सर्वेक्षण कार्य :

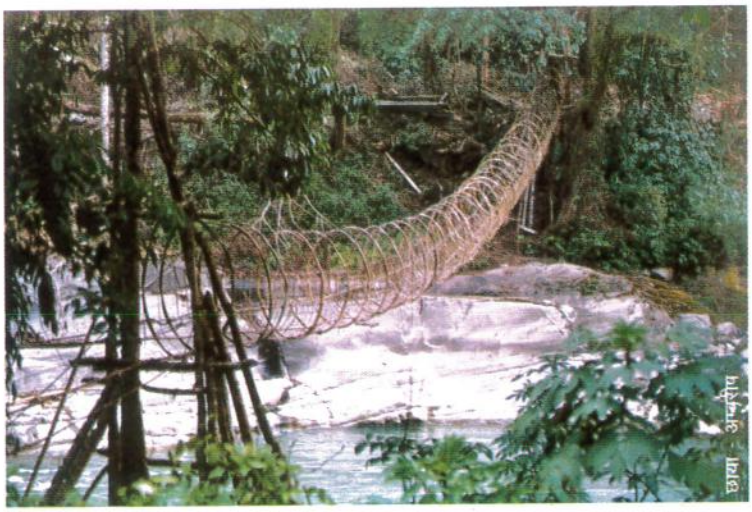

छाया - अम्बरीष

सुबनसिरी नदी पर स्थानीय केन प्रजाति से बना झुला पुल

सीमांकित जिले मी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण क्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण अभी अधूरी है। अतः क्षेत्र की जैव विविधता की जानकारी अभी कम ही उपलब्ध है। पूर्व में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर एस. एफ. आर. आई, ईटानगर, गौहाटी विश्वविद्यालय एवं वन विभाग ने कुछ सर्वेक्षण कार्य अवश्य किया है लेकिन इस पर प्रकाशित सामग्री अभी कम ही उपलब्ध है। इनमें श्री जी. डी. पाल, 1987 एस. के. दास, 1992 हरिदासन, 1989 मुकतम, 2003 आदि प्रमुख है।

प्रथम लेखक ने सन् 2004-05 में जिले में दो व्यापक सर्वेक्षण भ्रमण किये है जिसमें प्रथम भ्रमण अक्टूबर से नवम्बर माह में मुकमुगली से सियुम एवं आस-पास के क्षेत्रों में किया एवं 300 से अधिक पादप नमूने एकत्रित किये गये तथा द्वितीय भ्रमण पाका-हाजी से लेकर उत्तरी क्षेत्र लिमिकिंग एवं ओरक तक किया

गया जिसमें लगभग 400 पादप नमूने एवं सजीव पौधे एकत्रित किये गये। इनमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों, आरोही लताओं क्षुपों, शाकों एवं विभिन्न रंग बिरंगे आर्किड की अनेक जातियाँ शामिल हैं। सर्वेक्षण के दौरान जिस प्रकार के वन एवं वनस्पतियाँ दृष्टिगोचर होती है उनका संक्षेप में व्यौरा निम्नवत है।

वन एवं वनस्पतियाँ :

अपर सुबनसिरी के कुल वनों का क्षेत्रफल 3618 वर्ग कि. मी. है। जो क्षेत्र के क्षेत्रफल का 51.5% है। यहाँ पर लगभग 67,220 हेक्टेयर ''रिजर्व फारेस्ट'' विद्यमान है। जिले में अन्य आरक्षित क्षेत्र नही होने के कारण वनों का दोहन हो रहा है।

ऊष्णकटिबंधिय वन :

इस प्रकार के वन जिले के दक्षिण पश्चिमी क्षेत्रों के निम्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाये जाते है जिसमें मुरूमुगली, डाकपे, बाजा, दम्पोरिजो, पाका एवं दापोरिजो आदि क्षेत्र प्रमुखः है। इन वनों में डेसिडुअस, उप सदाबहार एवं सदाबहार वनस्पतियों की सलक साफ देखने को मिलती है जिनमें अधिक वर्षा एवं आर्द्रता के प्रभाव से विभिन्न विषम आकार की वृक्ष प्रजातियाँ क्षुपों, आरोही पौधों, शाकों एवं अधिपादपों के मिश्रण की बहुलता कुछ इस प्रकार है। *टर्मिनोलिया मापरोकार्पा, एल्टिंजिया एक्ससेल्सा, दुआबंगा ग्रेंडीफ्लोरा, शीमा वालिचाई, माईकेलिया चंपाका, सिन्नामोम्म सैसियोडैफनी चिकरेसिया टेबुलैरिस, टर्मिनेलिया छेबुला, कैनेरियम रेसिनिफोरम, टर्मिनेलिया बेल्लीरिका, ऐलिएंथस ग्रेंडिस, बोम्बैक्स सीबा, मेसुआ फेरिआ, बिचकोफिया जमानिका, ऐल्बीजिया ल्यूसिडा, ऐ. प्रोसेरा स्टर्कुलिया वाइलोसा, ऐल्टोकार्पस चपलासा, कैस्टेनोपसिस इंडिका, सेपियम बैकाटम, टैरोस्पमम कीलोनॉइडिस, केडया कैल्सिना, डिलेनिया इंडिका, रसर्पवीफ्लोरा, इरिथ्रिना स्ट्रीक्टा, क्लैरोडैन्ड्रूम कोलोब्रीकियेनम, क्लै० विनोसम, अनकेरिया सेसाइली फ्रैक्ट्स, डेस्मोडियम लेक्जीफ्लोरम, पोलीगोनम स्ट्रोगोसम, पो० हाइड्रोपीपर, थुनवरजिया कोक्सीनिया, थु० ग्रेंडीफ्लोरा, रूवस ऐल्सीफोलियस, रू० हेमिटोनी, सोलेनम टॉरवम, फ्लोगाकैंथस स्पी०, केसरपा वैराटा, मुसांडा रौक्सवर्घाई, इक्जौरा सबसैसाइलिस, यूरेना लोबाटा, वनोनिया वाल्कैमरीफोलिया, तथा सीर्टस, पाइपर, स्टीफेनिया, फाइकस, केसिया, ग्रीविया, मस्टरसिया, वाइटिस, स्माइलैक्स, लिया डैंड्रोबियम, बल्बोफिल्लम, रूबिया, माइकेनिया, कैनाबिस इम्पेशेन्स* एवं मूसा आदि की प्रजातियाँ।

उपोष्ण कटिबंधिय वन :

जिले में इस प्रकार के वनों की भी बहुलता देखने को मिलती है जो 900 मीटर से 1800 मीटर तक की ऊँचाई पर पाये जाते है। इन्हें तालिहा सियुम, नाचों एवं लिमिकिंग आदि क्षेत्रों में देखा जा सकता है। अधिक वर्षा के कारण इस वनों में नम एवं छायादार वनस्पतियों की बहुलता है। अतः यहा पर *मैंगनोलिएसी, लौरेसी, एक्टीनाइडेसी, ऐनार्काडिएसी, मैनीर्स्पमेसी, रूबिएसी ऑर्किडेसी, मेलस्टोमेसी, ओनाग्रेसी, वालसामिनेसी, मिर्सीनेसी* आदि कुलो की व्यापकता है। इन वनों को प्रमुख वनस्पतियाँ कुछ इस प्रकार से है – *मैंगनोलिया ग्रीफीथी, डाइसोजायलम प्रोसेरम, ओलिआ डॉयोसा, सिन्नामोम्म टॅमाला, सिड्रेला तूना, सेपियम वैकाटम, सौराइजा पंडुआना, सिजिजियम क्यूमिनाई, मेसुआ फेरिया, मेंगिफेरा सिलवेटिका, केयाअसामिका, लीथोर्कापस डेलवाटा, डलबरजिया असामिका, क्वेरकस स्पाइकाटा, क्वे० सेमीसेराटा, एब्रोमा अंगस्टा, अमूरा वालिचाई, म्युक्यूना मैक्रेकार्पा, एम्बैलिका फ्लोरीबंदा, लिट्सिया सिट्राटा, बिगोनिया एन्यूलाटा बि० पामेटा, आक्सीस्पोरा पेनीकुलाटा, आ० वैगेन्स, पैडेरिया स्केन्डैन्स, उसबेकिया कैपिटाटा, उ० नूटेन्स उ० स्टेलाटा, कैस्टोनोटिसस इंडिका, फोइबे ग्वालेपरेन्सिस, टॉलुया होडगसोनाई, लेपोर्टिया क्रेन्युलाटा, मोरस लेविगाटा, मेलिना आरबोरिया सोरिया असामिका, वटिसा लेंसीफोलिया, इलियोकार्पस फ्लोरीबंदस, ऐंथीसिफैलस चाइनेन्सिस, टॉलुमा फेलोकार्पा, मूसा वेलूटिना, मू० सिक्किमेन्सीस, स्लोपीनीमा माल्यूकेन्सिस, एल्पीनिया मालाकेन्सिस,*

लाइविसटोनिया जेन्किनसियाना, क्लेरोडैंड्रम विसकोसम, एन्टाडा स्कैंडेंस, वाइटिस लैटिफोलिया, फाइकस स्कैडेंस, नीटम स्कैंडेंस, कैलेमस फ्लोरोबंदस, कै० फ्लैजिलम, फाइरीनियम इम्ब्रीकाटम, मैलोटस एल्बस, बाहुनिया बेहलाई, बा० परप्यूरिया, रूबस इलिप्टिकस, टिनयोस्पोरा कोर्डीस्पोरा कोर्डीफोलिया, एनाफैलिस वुसुआ, हाइड्रोकोटाइल हिमालइका, इम्पेसेंस रूबिया, तथा पाइपर, सिस्मप्लोस, गाल्थीरिया, आर्टिमीसिया, आक्सेलिस, टाइकोसेंथिस, वाँडा,डैंडोबियम, बल्बोफिल्लम, सिलोगाइन, इरिया, गुडेयरा आदि की प्रजातियाँ।

समशीतोष्ण वन :

इस प्रकार के वन मुख्यतः 1800-2800 मीटर की ऊँचाई के मध्यवर्ती क्षेत्रो में पाये जाते है। जो जिले के उत्तरी भाग लिमिकिंग, ओरक, तामा चुंगचुंग की पहाड़ियो पर दृष्टिगोचर होते है। इनमें मुख्यतः ब्लूपाइन (पाइन्स वालिचियाना) क्वेरकस, रोडोडैन्ड्रोन्स, बेटुला, ऐसर, ऐलेनस टैक्सोकार्पस, ब्रेसाइओप्सिस आदि की प्रजातियाँ है। इन वनों में पायी जाने वाली अन्य वनस्पतियाँ है रूबस इल्पिटीकस, बरबेरिस ऐशियाटिका, इंपेराटा सिलिंडिका, बिगोनिया सिक्कीमेंसिस, ऐरिसिमा जैकवीमोंटाई, लीथोकार्पस डेलबाटा, काप्टिस तीता, गाल्थीरिया, लिट्सिया, ऐनाफैलिस, इम्पेसेन्स, रिकोग्लोसम, क्लेमैटिस, रेननकुलस, फोटिनिया, हाइपरिकम, होलबोइला, एकोनीटम, वर्जीनिया, जैथोजायलम, रोजा, मेसिआ, आर्टिमीसीया, हैडिकियम, आक्सीस्पोरा, क्लेरोजाइलोन, ग्रीविया हेडायटिस, लिंड्रिया, कैलेमस, क्राइफोर्डिया, ड्राईमेरिया आदि की प्रजातियाँ।

शीतोष्ण - उपहिमाद्रि वन :

इस प्रकार के वन 2800-3300 मीटर ऊचाँई के मध्य मिगीतुम पास एवं तुंगा पास पर पायी जाती है इनमें शीतोष्ण एवं हिमाद्रि वनस्पतियों का मिश्रण पाया जाता है। जिनमें क्वेरकस, ऐसर, बेटुला, पाइनस, रोडोडैन्ड्रोन्स, ऐकोनीटम टेक्सस, रोजा, कोराईडेलिस, इरिया, वुडेयरा,बल्बोफिल्लम आदि की प्रजातियाँ शामिल है। इस क्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण अभी पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है।

हिमाद्रि वन :

इस प्रकार के वन 3300 मी. एवं इससे अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाये जाते है। जिनमें बेटुला, जूनिपेरस, पोटेंटिला, हिप्पोफी, रोडोडैन्ड्रोन, पोपलस, एकोनीटम, फेगोपाइरम, डैक्टाइलो राइजा, पोडोफिल्लम, सौसुर्या, रियुम, प्रिमुला, नारडोस्टाइकस पिकरोराइजा आदि अमूल्य वनस्पति प्रजातियाँ पायी जाती है। इस प्रकार के वनों में हिमाद्रि घास के मैदान भी पाये जाते है।

बाँस वन :

उपरोक्त वन जिले के ऊष्ण कटिबंधिय उपसदाबहार वनों में विशुद्ध एवं मिश्रित अवस्था में पाये जाते है। स्थानीय लोग बाँस को प्रायः प्रयोग में लेते है जिसमें घर निर्माण से लेकर स्वादिष्ट सब्जीयाँ शामिल है। बाँसो की कुछ प्रजातियाँ है : सीजिस्टेकियम अरूणाचलेंसिस, डेंड्रोकैलेमस हैम्लिटोनी, डै० एट्रिक्ट्स, डै० जिगेंशियस, बैम्बूसा पेलिडा, बै० बलकुआ, बै०टुल्डा चिम्नोबैंबूसा कैलोसा, स्पूडोस्ट्राइकम पॉलीमफिम बियोहोजिया हेल फैरी आदि।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि अपर सुबनासिरी क्षेत्र, बहुमूल्य वनों एवं वनस्पतियों से परिपूर्ण है। प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखना यहाँ के निवासियों का प्रथम कर्तव्य होना चाहिये जो झूम खेती, वृक्षो के अवैध कटान, वनभूमि अतिक्रमण, जंगलों में लगायी जाने वाली अनावश्यक आग जैसी गतिविधियों में व्यस्त रहते है। वनविभाग एवं वनस्पति वैज्ञानिकों द्वारा वन विनाश के दुष्परिणामों से स्थानीय निवासियों को चेताया जाना चाहिये। जिले के लिमिकिग एवं टाकसिंग सर्किल क्षेत्र को आरक्षित वनों या अभयारण्य की श्रेणी में लाना चाहिये जिससे वहाँ पायी जाने वाली बहुमूल्य वनस्पतियों को भावी पीढ़ियों हेतु सुरक्षित रखा जा सके।

———————

मेहाओ वन्य जीव अभयारण्य – कवक सर्वेक्षण

जय राम शर्मा,
दीपिका बिष्ट एवं बी. पी. उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

अरूणाचल प्रदेश के दिवांग वैली जिलें में स्थित मेहाओ वन्यजीव अभयारण्य में सर्वेक्षण तथा विभिन्न कवकवर्गो जैसे एस्कोमाइसीटीज, एफाइलोफोरेल्स, एगेरीकेल्स, ट्रीमीलेल्स तथा गैस्टीरामाइसीटी आदि के विभिन्न आकार-प्रकार वाले कवकों का संग्रहण एक बहुत ही रोचक अनुभव रहा। इस सर्वेक्षण कार्य में, अभयारण्य के विभिन्न ऊँचाई वाले सभी क्षेत्रों (400 से 2665 मी.) जैसे रोइंग, सैली लेक, तिवारी गांव, मायोदिया पास, गोवारी कैम्प, मेहाओ झील, कोरानू तथा आसपास के सभी मनोरम स्थलों से कवक एकत्रित किए गए जिनका बाद में प्रयोगशाला में विस्तृत अध्ययन किया गया। यह कार्य भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के विभिन्न पादपवर्गो के विशेषज्ञ, वैज्ञानिको – डां के. पी. सिंह, डा. ए. के. वैश्य, डां जे. आर शर्मा, श्री बी. पी. उनियाल आदि द्वारा, डा. डी. के. सिंह के नेतृत्व में 9 नवम्बर से 13 दिसम्बर, 2000 के बीच सम्पन्न किया गया। प्रस्तुत लेख में इस समयावधि में उपस्थित कवक विविधता का रोचक वर्णन किया गया है।

छाया : जय राम शर्मा

जाइलेरिया पोलिमोर्फा

इस क्षेत्र में थैलीनुमा कवकों एस्कोमाइसिटिज (Sac fungi - Ascomycetes) में जाइलेरियेल्स वर्ग के सदस्यों का बाहुल्य था जो कि सड़ी-गली लकड़ियोँ पर उग रहे थे। ज़ाइलेरिया वंश के डण्डेनुमा काले रंग वाले कवककाय समूहों में उगते हैं तथा अभयारण्य में यह 12-15 जातियों द्वारा अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे थे, जिनमें जाइलेरियापोलिमोर्फा, जाइलेरिया लोंजाइप्स Xylaria polymorpha, Xylaria longipes प्रमुख थे। इसी वंश की तीन जातियाँ अध्ययन के पश्चात नयी पायी गयी। भूरे–काले रंग तथा गोल थैलेनुमा कवकों में डैल्डिनियाकंसेट्रिका Daldinia तथा हाइपोजाइलन प्रेजिफार्म Hypoxylon feagiforme दूसरी अन्य सड़ी–गली लकड़ियों पर बहुतायत देखी गयी जातियां हैं, पेड़ के तनों के पास घनी पत्तियों की खाद के नीचे छुपी हुयी सी अवस्था में लियोटियालुब्रिका, बल्गेरिया इंक्विनेंस तथा Leotia luibrica, Bulgaria inquinans निओबल्गरिया पुरा Neobulgaria pura की जातियाँ भी मौजूद थीं। लकड़ियों पर ही उगने वाले क्लोरोसिबोरिया एरूजिनोसा Chlorociboria aeruginosa के हर –पीले रंग के कवककायों तथा बिस्पोरेला साइट्रिना Bisporella citrina के चटक पीले रंग के कवककायों की अत्याधिक मात्रा के कारण इन्हे आश्रय प्रदान करने वाली लकड़ियाँ भी इन्हीं के रंगों में रंगी प्रतीत हो रही थीं।

प्यालेनुमा कवकों (cup fungi-Pezizales) में भूरे तथा चटक नारंगी लाल रंगों वाले एल्यूरिया औरेंशिया Aleuria auranitia तथा स्कुटिलिनिया स्कुटिलेटा Scutillinia scutellata के कवककाय बहुत ही आकर्षक थे जो बरबस ही सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। ये गीली तथा पूरी तरह से सड़ी

लकड़ियों पर ही उगे हुए थे जबकि पेजिजाबेडिया Peziza badia तथा सेर्कोसाइफा आस्ट्रिका Sarcocypha austrica नामक जातियां के किनारे मिट्टी पर उगी हुयी थी।

गुच्छी कवकों (Morels) के नाम से जानी जाने वाली जातियों में सिर्फ मोर्चेला Morchella की ही कुछ जातियाँ दिखायी पड़ी जबकि जाइरोमित्रा Gyromitra की जातियां तो लगभग नगण्य ही थी। इसके अतिरिक्त वर्पा कोनिका हेल्वेला कोनिका, Verpa conica, Helvella conica तथा एच क्रिस्पा H. crispa की जातियां भी केवल कुछ स्थानों पर व बहुत ही कम संख्या में देखी गयी। सूर्य के प्रकाश का इस क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में न होना शायद इसका कारण हो।

जीभनुमा कवकों (Earth tongue-Geoglossaceae) जिओग्लोसेसी के नाम से मशहूर कवकों का प्रतिनिधित्व जिओल्लोसम फेलेक्स, मिट्रुला Geolossum falax, Mitrula एवं ट्राइकोग्लोसम Trichoglossum वंश की जातियां कर रही थी। ये जातियां अधिक ऊँचाई वाले नीले स्थानों में हरितोद्भिदों के साथ-साथ जमीन पर उगते देखी गई।

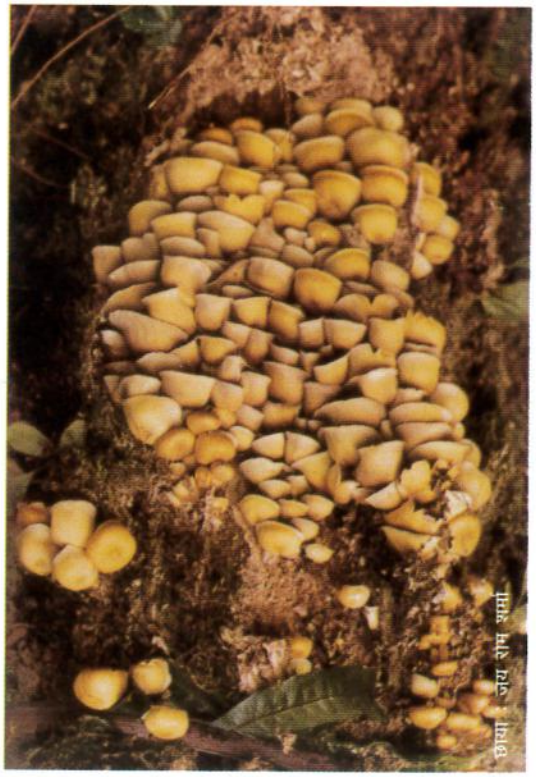

नेमेटोलोमा फेसिकुलेर

स्केलेटोकुटिस एर्मोफा

लकड़ियों को नुकसान पहुँचाने वाले एफिलोफोरेल्स (Wood rotting fungi-Aphyllophorales) कवकों में माइक्रोपोरस Microporus तथा फोमिप्टोसिस Fomitopsis वंश की पांच-पांच जातियाँ दिखायी पड़ी। इनमें भी माइक्रोपोरस जेंथोपस, एम. एफिनिस, एम. स्कोपुलोसस तथा फोमिटोप्सिस डाकमिअस Microporus xanthopus, M. affinis, M. scopulosus तथा Fomitopsis dochmius नामक जातियाँ तो अभयारण्य के सभी क्षेत्रों में बार-बार देखी गयी। माइक्रोपोरस Microporus वंश की ही एक जाति जो मेहाओ झील के पास एकत्र की गयी, इस वंश की नयी जाति पायी गयी। कम ऊँचाई वाले स्थानों पर निग्रोपोरस डूरुस, ट्रिकेप्टमवाइफोर्मिस, कोरिओंलाप्सिस टेल्फेरी, आर्लिएला स्केब्रोसा Nigroporus durus, Trichaptum biformis, Coriolopsis telfaril, Earliella scabrosa तथा एपोर्पियम हेक्सागोनायडिस Aporpium hexagonoides के सदस्य बहुतायत में पाए गए जबकि अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों (1500 मी. से अधिक) में फामिस फामेंटेरियस, साइक्लोमाइसेस टेवेसिनस, जर्केडेरा अडस्टा Fomes fomentarius, Cyclomyces tabacinus, Bjerkendera adusta,

Antrodiella zonata तथा ट्रेमेटिस वर्सिकोलर Trametes versicolor के सदस्य अधिक मात्रा में देखे गए।

वृक्ष के तनों को हानि पहुँचाने वाले कवकों में मुख्यतया फेलिनस Phellinus तथा जाइलोबोलस Xylobolus की जातियां देखी गयी जो कि प्रारम्भिक अवस्था में तनों के सड़ने के लिए उत्तरदायी हैं, जिसकें फलस्वरूप हवाओं द्वारा पेड़ आसानी से टूट जाते है, फेलिनस एलार्डी, पी टोरूलोसस,पी. पेक्टिनेटस Phellinus allardii, P. torulosus, P. pectinatus तथा जाईलोवोलास सबपिलिएटस Xylobolus subpileatus की जातियां पेड़ों पर परजीवी रूप में उगती हुयी देखी गयी। गेनोडार्मा Ganoderma तथा एमोरोडर्मा Amauroderma दोनों की ही लगभग 5-6 जातियां इस क्षेत्र में पेड़ो पर होने वाली विभिन्न बीमारियों के लिए उत्तरदायी हैं। जी एप्लेनेटम, जी लूसिडम G. appalanatum, G. lucidum तथा ए रूगोसम A. rugosum नामक जातियाँ 2000 मी. की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में अधिक देखी गयी। इस समूह के भी इस क्षेत्र से एकत्र किए गये तीन नमूने अध्ययन के पश्चात नयी जातियाँ पाए गए। फेलिनस पोल्टी Phellinus poelti नामक कवक जो अब तक सिर्फ नेपाल से ही ज्ञात था, उसे भी झील के आस-पास के क्षेत्र से एकत्र किया गया। फेलिनस Phellinus के भी लगभग दो नमूने इस वंश की नयी जातियां पाये गए। इसी प्रकार एक अन्य वंश इनोनोटस Inonotus की भी एक जाति आइ फ्लेविडस I. flavidus इस क्षेत्र से एकत्र की गयी, जो कि अब तक सिर्फ जापान से ही ज्ञात थी। डेडेलियासक्लेटा Daedalea sulcata नामक कवक जो अब तक सिर्फअण्डमान निकोबार द्वीप समूह से ही ज्ञात था, उसे भी क्षेत्र से तीन बार एकत्रित किया गया। फोलिओटा स्क्वेरोजा, पी. ऑरिवेल्ला, पी. म्यूटेबिलिस Pholiota squarrosa, P. aurivella, P. mutabilis तथा हाइफोलोमा स्केरोसा Hypholoma squarrosa की जातियाँ जीवित पेड़ो पर उग रही थी जिसके फलस्वरूप कुछ पेड़ धीरे-धीरे सड़ने लगे थे। जमीन पर मृतप्राय पड़ी लकड़ियां साधारणतया *मेगास्पोरोपोरिया कैवर्न्युलोसा पैचिकिटोस्पोरा पेपाइरेसिया, स्केलेटोक्युटिस एमोर्फा, पिक्नोपोरस सेंजिनियस, स्टर्कम गौसेपेटम, Megasporoporia cavernulosa, Pachykytospora papyracea, Grammothele delicatula, Skeletocutis amorpha, Pycnoporus sangineous, Stercum gaussapatum, S. sanguinelentum* तथा *Hyphodontia* व *Vararia* की जातियों को आश्रय प्रदान किये हुए थी। इसी स्थान से Grammothele, Skeletocutis तथा Pycnoporus के भी एक -एकनमूने एकत्रित किए गये। Schyzophyllum commune के Cypheloid कवककाय जीवित तथा मृतप्राय दोनों ही प्रकार की लकड़ियों पर भारी मात्रा में उग रहे थे जो कि प्रारम्भिक अवस्था में लकड़ियों के सड़ने के लिए उत्तरदायी हैं। Pleurotus वंश की भी 5-6 जातियां इस क्षेत्र में देखी गयी जिसमें P. sapidus तथा P. ostreatus अत्यधिक मात्रा में सड़ी हुयी लकड़ियों पर मायोदिया तथा उसके आस-पास के क्षेत्रो से एकत्र की गयी। ये दोनों ही जातियाँ खाद्य है लेकिन आश्वर्यजनक रूप से इन्ही से मिलते-जुलते वंश कैंथेरेलस, क्रेटेरेलस Cantharellus, Craterellus तथा लेंटिनस Lentinus की जातियों का यहाँ कोई प्रतिनिधित्व नहीं था ।

फेलस इम्पुडिकस

चिपचिपी जेलीनुमा कवकों ट्रेमेलेलिस (Jelly fungi - Tremellates) के कुछ वंश जैसे ट्रेमेला, आरिकुलेरिया, एक्सेडिया Tremella, Auricularia, Exidia तथा कैलोसेरा Calocera सड़े गले टूटे हुए तनों पर सर्वत्र देखे गये, इनमें भी T. mesentrica, T. foliacea, T. fuciformis, Auricularia auricula-gudae तथा Exidia glandulosa नामक जातियाँ तो पूरे संग्रहण क्षेत्र में फैली हुयी थी।

सड़ी गली पत्तियों तथा लकड़ियों की खाद मेरेस्मियस, माइसेना Marasmius, Mycena तथा मेरेस्मिएलस Marasmiellus की जातियों की अधिकता से इन्हीं में सनी हुयी प्रतीत हो रही थी। इनमें भी मेरेस्मियस ग्रेमिनम Marasmius gramminum बाँस के तनों पर एम. रोटूला, एम एंड्रसियस M. rotula, M. andraceus व माइसेना Mycena galopus पत्तियों की खाद पर, Mycena indinata व M. galericulata सड़े-गले टूटे तनों पर तथा एम फ्लेवोएल्वा M. flavoalba हरितोद्भिदों के बीच में उग रहीं थी। सामान्यतः सर्वत्र पाए जाने वाले ख्सूलेसी, बोलीटेसी, गोमफेसी, गोम्फिडियेसी, Russulaceae, Boletaceae, Gomphaceae, Gomphidiaceae तथा स्ट्रोफरिएसी Strophariaceae के सदस्य आश्चर्यजनक रूप से इस क्षेत्र में कम थे, केवल बोलेटस सुवेल्लस, बी. इरिथ्रोपस Boletus subellus, B. erythropus (जो कि खुरचंने पर नीले रंग में परिवर्तित हो जाती है), रसूलाइमेटिका, आर. इंटेग्रा Russula emetica, R. integra तथा क्रोमस Chroogamus व गोमफिडियस Gomphidius की तीन-तीन जातियाँ मेहाओं झील के आसपास से एकत्र की गयी। इन कवकों के उचित विकास के लिए जरूरी बरसात का समय न होने के कारण दूसरे सर्वत्र पाए जाने वाले वंश जैसे लेक्टेरियस, रसूला, टाइलोपिलास, जाइरोपोरस, सुइलस, जेरोकोमस लेक्केरिया Lactarius, Russula, Tylopilus, Gyroporus, Suillus, Xerocomus, Laccaria, Stropharia, Omphalina, Hygrophorus, Hygrocybe तथा Volvaria व Agaricus की खाद्योपयोगी जातियाँ भी इन क्षेत्र में नहीं पायी गयी।

इंकी कैप Inky-cap के नाम से पहचाने जाने वाले कोप्रिनेसी Coprinaceae कुल के सदस्य लगभग अपनी 10 जातियों के साथ यहाँ उपस्थित थे, जिनमें कोप्रिनस, पेनेओलस, सैथिरेला Coprinus, Panaeolus, Psathyrella व पेनेल्लस Panellus की जातियाँ तथा Coprinus micaceus, C. disseminalus (गोबर के ऊपर) व Panellus stipicus (सड़ी-गली लकड़ियों के ऊपर) अधिक मात्रा में उग रही थीं।

पेटू कवक (Stomach fungi), गैस्टीरोमाइसीटीज के सदस्यों का भी यहाँ अधिक प्रतिनिधित्व नहीं था। चिड़िया के घोंसलेनुमा कवकों (Bird's nest fungi) की दो जातियां कुर्सिबुलम ब्रुसिबुलिफार्म तथा Cyathus striatus सड़ी-गली लकड़ियों के ऊपर उग रही थीं। इसी वर्ग के अन्य वंशों Nidula तथा Nidularia का तो नामोंनिशान ही नहीं था। इसी समूह की सर्वत्र पायी जाने वाली अन्य जातियाँ जैसे Geastrum (अर्थ स्टार), Calvatia तथा Bovista (पफबॉल) आदि भी उचित बरसात का समय न होने के कारण यहाँ अनुपस्थित थी। यहीं कुछ स्थानों पर हरितोद्भिदों तथा पेड़ों के नीचे Lycoperdon की दो जातियाँ L. Pyriforme तथा L. perlatum पायी गयी। कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में Scleroderma citrimum नामक अर्थ बॉल भी देखी गयी। तेज गन्ध उत्पन्न कर कीट-पतंगों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले स्टिक हार्नस (Phallales) के भी दो वंशों *Phallus* तथा *Mutinus* की एक-एक जाति पत्तियों की खाद के ऊपर विशेषतः बाँस के तनों के आस पास उगती हुयी देखी गयी।

संक्षेप में, यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि कवक विविधता हेतु किया गया यह सर्वेक्षण दौरा पूरी तरह सफल रहा। इसके दौरान कवकों की लगभग 350 जातियों के 362 नमूने एकत्रित किए गए, जिनमें *Xylaria* वंश की जीन जातियां तथा Ganoderma व *Amauroderma* की तीन-तीन जातियाँ अध्ययन के पश्चात् अभी तक अवर्णित पायी गयी। नमीयुक्त जलवायु तथा विविध आश्रय स्थलों की उपस्थिति के कारण ही यह क्षेत्र कवक विकास की दृष्टि से अति उपयुक्त है। *Phellinus poelti* नामक जाति जो अभी तक केवल नेपाल से ही ज्ञात थी, वो भी मेहाओ झील के पास से एकत्र की गयी। इसी तरह *Inonotus flavidus* जो

अभी तक सिर्फ जापान से ज्ञात थी तथा *Daedalia sulcata* नामक जाति जो सिर्फ अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह से ज्ञात थी, उन्हे भी इस अभयारण्य से एकत्रित किया गया। अनुमान है कि बाकी नमूने के गहन अध्ययन के पश्चात् *Grammothele*, *Skeletocutis* व *Microporus* की भी नयी जातियाँ प्रकाश में आएंगी।

- जितने वृक्ष लगाओगे।
  उतना जीवन पाओगे।। –(इन्दु गुप्ता)
- वृक्ष सुखद जीवन आधार।
  रोको इन पर अत्याचार।। –(शुभ्रा रंजन)
- काटोगे यदि हरी डाल।
  सांसौं से होगे कंगाल।। –(वीणपाणि जोशी)

अरूणाचल प्रदेश की वनस्पति-विविधता एवं इसका संरक्षण

अनंत कु० वैश्य एवं रितेश कु० चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर

अरूणाचल प्रदेश, जिसे जैव-विविधता के दृष्टिकोण से संपूर्ण विश्व के 25 प्रमुख 'उत्तप्त स्थलों' में गिना जाता है; विविध प्रकार के स्थानिक, विरल एवं लुप्तप्राय पौधों की उपलब्धता के कारण वानस्पतिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। अत्यंत दुर्गम भौगोलिक संरचना, उत्तंग पर्वत शिखरों, पातालनुमा रवाइयों, झीलों तथा विविध प्रकार की मृदा एवं जलवायु की उपस्थिति के कारण इस प्रदेश की मूल्यवान एवं मनोहारी वानस्पतिक संपदा विभिन्न रूपों से प्रभावित होती हैं जिस कारण यहाँ नाना प्रकार के वन्य एवं कृष्य पौधों के स्वजात वंशजों की प्रचुर उपलब्धता है। अतः इस महत्वपूर्ण स्थल को ''पुष्पी पौधों का उद्‌गमस्थल'' तथा ''जैविक संसाधनों का जैव-भौगोलिक प्रवेश द्वार'' कहा जाना तर्कसंगत प्रतीत होता हैं।

19 वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल से ही इस प्रदेश में अनेक गणमान्य वनस्पतिज्ञों जैसे–बुकनन-हैमिल्टन (1820), ग्रिफिथ (1847), हूकर (1854, 1872-97), वर्किल (1920-25) ने समन्वेषण का कार्य किया एवं कई महत्वपूर्ण सूचनाएँ संग्रहित कीं। तत्पश्चात, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा भी इस क्षेत्र में व्यापक समन्वेषण की प्रक्रिया प्रारंभ की गई जिसमें इसके शिलांग एवं ईटानगर केन्द्र की महत्वपूर्ण भूमिका रही। परिणामस्वरूप, कई महत्वपूर्ण कृतियों एवं वनस्पति जातों का मुद्रण संभव हो पाया।

अपनी सुगम्यता तथा वानस्पतिक-विविधता के कारण वर्षों तक वनस्पतिज्ञों के आकर्षण का प्रमुख केंद्र रह चुके राज्य सिक्किम को विविधता के दृष्टिकोण से पूर्वी हिमालय का प्रमुख क्षेत्र माना जाता रहा है, परंतु सर्वेक्षणों के पश्चात यह पता चला है कि अरूणाचल प्रदेश कई मायनों में सिक्किम से अग्रणी है। उदाहरणस्वरूप : ''*रोडोडेन्ड्रौन* का स्वर्ग'' कहे जाने वाले सिक्किम में इसकी कुल 36 प्रजातियाँ पाई गयी हैं जबकि अरूणाचल प्रदेश में इसकी कुल 61 प्रजातियाँ पाई गई है।

नानारूप जलवायु एवं उच्चता से युक्त इस राज्य की अनोखी पारिस्थितकी, जो उष्णकटिबंधीय वनों से लेकर हिमाद्रि वनों तक फैली हुई है, दर्शनीय है। यहाँ के वनों को मुख्यतः पाँच भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जो निम्नलिखित है :–

1. **उष्णकटिबन्धीय वन** : समुद्रतल से 900 मीटर की ऊँचाई तक पाए जानेवाले ये वन यहाँ के सभी जिलों में देखे जा सकते हैं। इन वनों में दुआबंगा, मूसा, मेसुआ, टर्मिनेलिया, कैस्टानॉप्सिस, कैलेमस आदि की प्रजातियाँ मुख्य तौर पर देखी जा सकती हैं।

2. **उपोष्णकटिबन्धीय वन** : समुद्रतल से 900 से 1800 मी० की ऊचाई तक पाए जानेवाले ये वन घने तथा सदाबहार प्रकृति के होते हैं। इनके अंतर्गत मुख्यतः फाइकस, क्वेरकस, कैमेलिया, रूबस, पाइनस, सुगा तथा कई ऑर्किड की प्रजातियाँ देखी जा सकती हैं।

3. **समशीतोष्ण वन** : ये वन समुद्रतल से 2800 से 3500 मी० की ऊँचाई तक देखे जा सकते हैं। ठंड के मौसम में उन्हें नियमित हिमपात का भी समना करता पड़ता है। यहाँ पाए जानेवाले पौधों में मुख्यतः रोडोडेन्ड्रोन, वेटुला, आइलेक्स, अगापिटिस आदि की प्रजातियाँ हैं।

4. **उपहिमाद्रि वन** : 3500 से 4000 मीटर के उत्तंग पर्वत शिखरों पर पाए जानेवाले इन वनों में मुख्यतः शाक एवं झाड़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं तथा वृक्षों का अभाव होता हैं। यहाँ एबीज, क्यूप्रेसस, जूनीपेरस, रोडोडेन्ड्रॉन तथा लैरिक्स के अलावा कुछ आर्किड की प्रजातियाँ भी प्रमुखता से देखी जा सकती हैं।

5. **हिमाद्रि वन** : समुद्रतल से 4000 मीटर से अधिक की उच्चतम सीमा पर पाए जाने वाले ये वन बर्ष में

कई महीनों तक हिमाच्छादित रहते हैं, परिणामस्वरूप, वृक्षों का अभाव रहता है। परंतु कई झाड़ी एवं शाक की प्रजातियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे–प्रिमूला, रोडोडेन्ड्रॉन, एकोनीटम, जेन्सियाना आदि की प्रजातियाँ।'

इन वनों के अतिरिक्त यहाँ अत्यधिक ऊँचाई पर अवस्थित कई झील भी दर्शनीय हैं जिनकी सुंदरता आकर्षणीय है। जैसे–त्वांग जिले में माधुरी लेक, लोहित जिले में ग्लो लेक, दिबांग जिले में मेहाओ लेक आदि। इनमें त्वांग जिले के माधुरी लेक का नामकरण सुविख्यात सिने तारिका माधुरी दीक्षित के नाम पर किया गया है जो अपनी सुप्रसिद्ध फिल्म 'कोयला' की शुटिंग के दौरान यहाँ आ चुकी हैं। सेना के द्वारा देखभाल की जा रही यह झील पर्यटकों के आगमन का एक बड़ा केन्द्र है। इसी प्रकार यदि यहाँ के अन्य झीलों को भी पर्यटकों के लिए सुचारू रूप से विकसित किया जाय तो यह राज्य की उन्नति के लिए हितकारी होगा।

वानस्पतिक विविधता :

संपूर्ण भारतवर्ष के क्षेत्रफल का 2.54 प्रतिशत भाग अधिग्रहित करने वाले इस राज्य में संपूर्ण भारतवर्ष में पाए जानेवाले पुष्पी पौधों का 23.53% हिस्सा सन्निहित है। अध्ययनोपरांत यह पता चला है कि भारत में पाए जाने वाले सभी 247 पुष्पी पौधों के कुलों में से 192 कुल के पौधे यहाँ पाए जाते हैं जिनमें 165 द्विबीजपत्री तथा 27 एकबीजपत्री समूह के हैं। इन कुलों में से प्रमुख प्रभावी परिवार हैं : एस्टेरेसी, साइपरेसी एरिकेसी यूफोर्बिएसी, लेगुमिनोसी, ऑर्किडेसी, पोएसी, रोजेसी एवं अर्टिकेसी।

इन कुलों में से ऑर्किडेसी परिवार के सदस्यों की प्रचुर उपलब्धता ध्यातव्य है। संपूर्ण भारत में पाई जानेवाली कुल 1229 ऑर्किड प्रजातियों में से यहाँ 552 प्रजातियाँ पाई गई हैं। अतः इस राज्य को 'ऑर्किडों का स्वर्ग' भी कहा गया है। परंतु दुर्भाग्यवश ''पैफियोपीडिलम वार्डी'' नामक एक ऑर्किड जो यहाँ के लोहित जिले में पाया गया था संभवतः आज अपना, अस्तित्व खो चुका है। ऐसी 41 अन्य प्रजातियाँ भी विलुप्ति की कगार पर हैं अतः इनका संरक्षण अत्यावश्यक है।

यहाँ के अपुष्पी पौधों की विविधता भी कम नहीं है जिनमें फर्न एवं उनके संबंधी पौधों की भूमिका प्रमुख है। भारत में पाई जानेवाली फर्न की कुल 1020 प्रजातियों में से 452 प्रजातियाँ यहाँ पाई गई हैं। इनके अलावा लाइकोपोडियम की 14 प्रजातियाँ भी यहाँ पाई जाती हैं जो इस क्षेत्र की विविधता को और संपन्न बनाती हैं।

इनके अलावा यहाँ बासों की कुल 26 प्रजातियाँ भी पाई जाती हैं जिनमें 'डेन्ड्रोकैलेमस साहनी' तथा 'साइजोस्टेकियम अरूणाचलेन्सिस' नामक दुर्लभ एवं स्थानिक बाँस भी शामिल है।

इतना ही नहीं, यहाँ की जलवायु अनावृत्तबीजी पौधों के लिए भी अनुकूल है। यहाँ इनकी कुल 29 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिनमें से कई दुर्लभ, सजावटी एवं औषधीय प्रकृति के है''।

स्थानिकता :

अपनी दुर्गम भौगोलिक संरचना एवं अनूठी पारिस्थितकी के कारण यहाँ स्थानिक पौधों की भी बहुतायत है। एक रिपोर्ट के अनुसार, यहाँ 238 प्रकार के स्थानिक पौधे पाए गए हैं जिनमें अमेंटोटैक्सस असामिका, जिम्नोक्लैडस असामिका, लिट्सिया, मिशिमिएंसिस, तथा कैमेलिया-सियांगेसिस जैसे अत्यन्त ही दुर्लभ एवं सीमित प्रक्षेत्र में पाए जानेवाले पौधे शामिल हैं। इनके अलावा रोडोडेन्ड्रॉन तवांगेंसिस, रोडोडेन्ड्रोंन–तालेवैलिएन्सिस, हेडाइकियम लौंगिपेडंकुलेटम, हेडाइकियम राओआ आदि जैसे स्थानिक सजावटी पौधे भी यहाँ देखे जा सकते हैं।

कुछ ऐसे पौधे जिन्हें असम, मणिपुर, मेघालय, सिक्किम एवं नगालैण्ड में दुर्लभ एवं स्थानिक करार दिया गया था, यहाँ प्रचुर मात्रा में पाए गए हैं। जैसे–एसर सिक्किमेन्सिस, इम्पेसेंस खासियाना, रोडोडेन्ड्रॉन केन्ड्रिकाई, साइजियम-आसामिकम आदि।

औषधीय पौधे :

अरूणाचल प्रदेश को ''औषधीय पौधों का प्राकृतिक भंडार'' भी कहा गया है। उस सुदूर राज्य के निवासियों के पौधों के गहरे संवंध एवं उन्हें उपयोग में लाने की देशज क्षमता ने क्ई औषधि निर्माण में लगी कंपनियों का ध्यान आकृष्ट किया है। इस राज्य से अभी तक 500 से अधिक औषधीय मूल्य वाले पौधों की जानकारी प्राप्त हुई है, इनमें एकोनाइट, जेन्सियाना, नोडोस्टैकिस जटामांसी, कॉप्टिस टीटा तथा कुछ दुर्लभ पौधें जैसे– पिकरोराइजा कुरोआ, पोडोफाइलम सिक्किमेन्सिस, पोडोफाइलम हेक्सेन्ड्रम, इलीसियम-ग्रिफिथियाई आदि प्रमुख है। पंरतु पिछले कुछ वर्षो से इन पौधों के आवश्यकता से अधिक दोहन के परिणाम स्वरूप इनके अस्तित्व पर खतरा उत्पन्न हो गया हैं। अतः एक निश्चित समय सीमा के अंदर दुरूपयोग को निषिद्ध करना एवं इनके दीर्घकालिक विकास की व्यवस्था करना अत्यावश्यक हैं।

काष्ठोत्पादक पौधे :

अरूणाचल प्रदेश क्ई प्रकार के मूल्यवान काष्ठोत्पादक पौधों से भरपूर है। यहाँ की एक बड़ी आबादी आर्थिक दृष्टिकोण से इन्हीं लकड़ियों पर निर्भर है। संपूर्ण भारतवर्ष में यहाँ की लकड़ियों के अलावा बाँस तथा बेंतों की बड़ी माँग है। इनका उपयोग फर्नीचर तथा घरेलू सामान बनाने में विस्तृत पैमाने पर किया जाता है। इन काष्ठोत्पादक पौधों में अल्टिंजिया एक्सेल्सा, अमोरा वैलीचियाई तथा बाउहिनीया, दुआबंगा, मेसुआ, गार्सीनिया, टर्मिनेलिया आदि की प्रजातियाँ प्रमुख हैं।

वन्य सजावटी पौधे :

ऑर्किड तथा रोडोडेन्ड्रॉन जैसे सुंदर एवं सजावटी पौधों के लिए प्रसिद्ध इस राज्य में अनेक ऐसे पौधे भी पाए जाते हैं जिनकी सुंदरता अतुलनीय है तथा इनका आर्थिक दोहन राज्य की उन्नति के लिए हितकारी सिद्ध हो सकता हैं। जैसे – हाइपेरिकम ग्रिफिथियाई, मेलास्टोमा नॉर्मेल, ऑस्बेकिया स्टीलाटा, एलोकेसिया फैलेक्स, एरिसीमा-फलैवम आदि। हालँकि यहाँ के पश्चिमी कामेंग जिले के टीपी में एक ऑर्किड शोध केन्द्र की स्थापना की गई है जहाँ ऑर्किड की क्ई संकर प्रजातियाँ भी विकसित की गई हैं परन्तु इस दिशा में और भी प्रयास की आवश्यकता है ताकि पौधों के संरक्षण के साथ-साथ राज्य के वासियों के आर्थिक लाभ की अभिवृद्धि हो सके।

कृष्य पौधों के स्वजात वंशज :

अरूणाचल प्रदेश को पूर्वोत्तर राज्यों सहित ''कृष्य पौधों का हिन्दुस्तानी-उदगम केंद्र'' भी कहा गया है। यहाँ कृष्य पौधों की कई जंगली प्रजातियाँ प्रचुरता में उपलब्ध हैं। उनमें से कई प्रजातियाँ रोग एवं कीट-प्रतिरोधी होती हैं। यदि इन गुणों का जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा ठीक से लाभ उठाया जाय तो हम उच्च प्रतिरोधी स्तर के पौधे प्राप्त करने में सफल होंगे। इस प्रकार के पौधों में यहाँ केला, चावल, चाय, संतरा, सोयाबीन, खीरा, चना, मक्का आदि की प्रजातियाँ प्रमुखता से देखी जा सकती हैं।

कुछ विलक्षण पौधे :

अरूणाचल प्रदेश में क्ई ऐसे पौधे भी पाए गए हैं जिनके विशिष्ट गुणों की ओर हमारा ध्यान अनायास ही आकृष्ट हो जाता है। जैसे – रियम-नोबाइल नामक एक पौधे के सहपत्र काफी बड़े पत्तीनुमा तथा पारदर्शी होते हैं जो एक कमरानुमा संरचना बनाते हैं। पुष्प इनके अंदर ही अवस्थित होता है तथा शिशिर ऋतु में कीट इनके अंदर प्राविष्ट कर आश्रय तो पाते ही हैं साथ ही परागण की क्रिया में भी सहायता पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त 'मोनोट्रॉपेस्ट्रम यूनिफ्लोरा' नामक एक क्लोरोफिल रहित आकर्षक पौधा भी यहाँ प्रचुरता में पाया

जाता हैं। 'गैलियोला फाल्कोंनेरी' नामक भारत का सबसे लंबा ऑर्किड एवं कुछ कीटभक्षी पौधे भी यहाँ देखे जा सकते हैं।

उद्भिदों की वर्तमान स्थिति :

अनेक जैव एवं अजैव कारकों जैसे-बाढ़, भूस्खलन, भूकंप तथा दावानल ने उस क्षेत्र के उद्भिदों को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। आर्थिक लाभ हेतु वनों का आवश्यकता से अधिक दोहन किया जा रहा है जिससे कई दुर्लभ प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं तथा कई इस कगार पर खड़ी हैं। दिनोंदिन वढ़ती हुई अवैज्ञानिक झूम कृषि ने कई स्थानों पर बंजर भूमि या तृण वनों को जन्म दिया है जहाँ कई विदेशी खर पतवारों का अन्तर्वेधन हो चुका हैं। ये खर-पतवार अपनी बढ़ती संख्या एवं पर-परागण के द्वारा अपने पड़ोसी पौधों के लिए खतरा उत्पन्न कर रहे हैं। परिणामस्वरूप, कई महत्वपूर्ण पौधे जैसे–टैक्सस वैलीचियाना, कैनेरियम-स्ट्रिक्टम, सिनामोमम ग्लैडुलीफेरम आदि के अस्तित्व पर बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया हैं। एक अभिनव सर्वेक्षण के अनुसार यहाँ पाई जानेवाली 41 आर्किड की प्रजातियाँ विलुप्ति की कगार पर हैं अतः इनके संरक्षण की दिशा में अथक प्रयास वांछित है।

संरक्षण :

भारत के अन्य वनों की भाँति ही अरूणाचल प्रदेश के वन भी उन्हीं स्थानों पर अधिक प्रभावित हुए हैं जहाँ मानवीय गतिविधियाँ बढ़ी हैं। इन वनों के संरक्षण हेतु भारत सरकार ने यहाँ 9 वन्यजीव आश्रयणी, 2 राष्ट्रीय ऊद्यान, एक आरक्षित जीवमण्डल तथा एक आर्किड अभयारण्य की स्थापना की है। परंतु यहाँ की मूल्यवान वन संपदा के संरक्षण हेतु पहले यह आवश्यक है कि उन सभी पौधों की पहचान की जाय जिनके अस्तित्व पर खतरा है तथा उन्हें ठीक प्रकार से वर्गीकृत कर एक निश्चित रणनीति के तहत संरक्षण अभियान चलाया जाय। उन वनस्पतियों का भी संर्वेक्षण किया जाय जिनका लंबे अंतराल से संग्रहण न किया गया हो। उन वनस्पतियों को शीर्ष प्राथमिकता दी जाय तो औषधीय हों या आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हों। राज्य वन शोध संस्थान, इटानगर ने उस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं। यहाँ कई आर्थिक लाभ वाली वनस्पतियों के जर्मप्लाज्म को परिरक्षित कर रखा गया है ताकि भविष्य में नई तकनीकों जैसे ऊतक संवर्धन, क्लोनल प्रोपगेशन आदि के द्वारा इनके अस्तित्व की रक्षा की जा सके। इसके अलावा यह भी ध्यातव्य है कि किसी भी प्रकार के संरक्षण कार्यक्रम में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका जन-मानस की होती है। अतः यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक समुदाय एवं नृ-जातियों के बीच एक सही समझ विकसित की जाय जिससे न सिर्फ उनके बल्कि समस्त मानवजाति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो।

———————

महिलाओं का पर्यावरण संरक्षण में योगदान

एस० एल० गुप्त
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

हमारा वातावरण वर्तमान में इतना प्रदूषित हो चुका है कि अब घर-घर, स्कूल, कार्यालय व सार्वजनिक स्थान आदि सभी जगहों पर पर्यावरण संरक्षण की चर्चा होने लगी है। सरकारी स्तर के अलावा अनेकों स्वयं सेवी संस्थाएं तथा सहायता प्राप्त गैर सरकारी संस्थाए इसमें बढ़-चढ़कर योगदान करने लगी है। बड़े-बूढ़ों, युवकों तथा बच्चों के अलावा महिलाओं का योगदान भी अब चर्चा का विषय बन गया है।

जैसाकि हम जानते है कि पर्यावरण दो शब्दों परि + आवरण से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ हमारे चारों ओर ('परि') का वातावरण ('आवरण') है। इसके दो प्रमुख अंग–जैव (biotic) व अजैव (abiotic) है, जिन में चार प्रमुख तत्व–स्थल, जल, वायु एवं पदार्थ जैव पदार्थ है। पर्यावरण के ये दोनों अंग एक दूसरे के पूरक हमेशा से है और रहेंगे। ठीक उसी तरह जिस तरह से इस समाज के दो अभिन्न एवं पूरक अंगों के रूप में पुरुष और महिलाएं हैं। विकास की गति ने जहां हमारे पर्यावरण को काफी क्षति पंहुचाई है वहीं इसको बचाने में पुरूषों के अलावा महिलाओं ने सराहनीय योगदान दिया है।

हरी चादर यानी हमारी वन संपदा निरंतर सिकुड़ रही हैं। 1997 की स्टेटस रिपोर्ट के अनुसार 1995 से 1997 तक के मात्र दो वर्ष में लगभग 5500 वर्ग कि० मि० वन कट चुके हैं जबकि पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेकों आंदोलन देशभर में चल रहे हैं। इन आंदोलनों की शुरुआत का श्रेय राजस्थान के विश्नोई समाज के लोगों खासतौर से विश्नोई महिलाओं को जाता हैं जिन्होंने पेड़ों को कटने से बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। सत्तर के दशक में इन आंदोलन को नई दिशा मिली चाहे वह उत्तराखंड का 'चिपको आंदोलन' हो या आंध्रप्रदेश का 'आप्पिको' या फिर केरल का साइलेंट वैली आंदोलन हो या गुजरात व मध्यप्रदेश का नर्मदा आंदोलन हो। इन सभी में महिलाओं ने कहीं न कहीं अपने-अपने स्तर पर जल, जंगल और जमीन की रक्षा के प्रति जनता को जागरूक किया है। यही क्यों, हमारे यहां तो वृक्षों को पूजन की हजारो वर्ष पुरानी परम्परा है। विश्नोई महिलाओं द्वारा वृक्षों को बचाने के लिए अपने जान का उत्सर्ग करना अब एक गाथा बन गई हैं।

बौद्धिक, वैज्ञानिक और राजनीतिक तीनों स्तरों पर महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण पर बहुमूल्य योगदान दिया है। राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण के प्रति जागरूकता का श्रेय जिन भारतीय महिलाओं को जाता है, उनमें प्रमुख हैं–स्व० श्रीमती इंदिरा गांधी , डा० वंदना शिवा, डा० सुमन सहाय, श्रीमती मनेका गांधी, सुश्री मेधा पाटकर और सुश्री अरूंधती राय। इसके अलावा उत्तराखंड की अनेक अनामा महिलाएं भी इसमे शामिल हैं।

राजनीतिक स्तर पर पर्यावरण एवं पौधों के प्रति चेतना जागृत करने का श्रेय भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री स्व० श्रीमती इंदिरा गांधी को जाता है जिन्होंने अपने प्रधान मंत्रित्वकाल में पर्याावरण एवं वन मंत्रालय का एक नया विभाग गठित करके उसके सचिव पद पर एक पर्यावरणविद् को नियुक्त किया था। श्रीमती गांधी के अनुसार यदि कोई वृक्षों के उत्तमतम अन्तः प्रेरणा से चलायमान होता है तो प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह वृक्षारोपण करें और उसकी देखभाल करे। समय-समय पर उनके द्वारा व्यक्त किये जाये विचार पर्यावरण संरक्षण के प्रति उनकी जागरूकता को प्रदर्शित करता है :–

''– शताब्दियों पहले सम्राट अशोक ने एक राजा के कर्त्तव्य को स्पष्ट किया था कि उसका कार्य मात्र नागरिकों को बचाना और गलत काम करने वालों को सजा देना ही नहीं है बल्कि पशुजीवन एवं वन-वृक्षों की रक्षा करना भी हैं।''

–''हमारे पूर्वजों ने अपने मित्र वन प्राणियों का आदर करना एवं उनके साथ एक होकर रहना सीखा था। यह महान परम्परा भावी पीढ़ियों के लिए ईश्वर प्रेरणा या देव ज्ञात है।''

–''मानव अस्तित्व पशु एवं पौधों के जीवन पर निर्भर है।'' – इंदिरा गांधी।

भूमि को प्रदूषण से बचाने के लिये डा० वंदना शिवा का उच्चतम न्यायालय तक पहुंचना पर्यावरण संरक्षण के प्रति कानूनी बाध्यता को भी दर्शाता हैं। विदित हो कि कुछ वर्षों पहले डा० शिवा ने अपशिष्ट पदार्थो के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और भारत में बिना रोक टोक के आने के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी जिसके फल-स्वरूप न्यायालय ने भारत सरकार को नोटिस दिया था। उल्लेखनीय है कि खतरनाक अपशिष्ट पदार्थो पर रोक हेतु राष्ट्रो के बीच सहमति के बावजूद गरीव और अविकसित देशों में इनका धड़ल्ले से आगमन हो रहा हैं। पर्यावरण संरक्षण हेतु महिलाओं की सामूहिक सहभागिता का उदाहरण उत्तराखण्ड में मिलता है जिसने सत्तर के दशक में 'चिपको आंदोलन' को जन्म दिया। इस आंदोलन में महिलाएं कटनेवाले वृक्ष से चिपक जाती हैं जिससे वन कटने की प्रवृत्ति पर भारी अंकुश लगा है। इसी उत्तराखण्ड में पर्यावरण संरक्षण हेतु एक अनूठी योजना जन मानस में आंदोलित हैं जिसके प्रणेता हालांकि एक पुरुष श्री कल्याण सिंह रावत है परन्तु सारा खेल महिलाओं द्वारा संचालित है। वृक्षरोपण की इस अनूठी प्रयास का नाम 'मैती' हैं जिसका शाब्दिक अर्थ 'मायका' हैं। इस अनोखी एवं लोकप्रिय मैती में प्रत्येक युवती शादी के समय वृक्षरोपण करती हैं। इन वृक्षों की देखभाल युवती की छोटी बहन के जरिए गांव की संस्था करती हैं। यह प्रथा आर्थिक रूप से भी कामयाब है क्योंकि वृक्षों का चयन मिट्टी की गुणवत्ता, जलवायु तथा आर्थिक उपयोगिता के आधार पर होता है। इस प्रथा का दिलचस्प पहलू यह है कि वृक्षों की देखभाल पर जो रकम खर्च होती है, वह शादी के समय दुल्हे द्वारा रस्म के तौर पर हैसियत के अनुसार युवती की छोटी बहनों अथवा संस्था को दी गई रकम से होती है। कमी की भरपाई गांव के लोग अथवा संस्था मिल जुल कर करती है।

इस अनोखी प्रथा को यदि देश की सभी युवतियां मिल जुल कर अपना ले तो जहां एक ओर पर्यावरण संतुलन बनाएरखने में कामयाबी मिलेगी वहीं वन महोत्सव जैसे रस्मी आयोजनो पर लाखों रूपयों की बरबादी से भी बचा जा सकता है। हमें यह नही भुलना चाहिए कि जंगलका मतलव सिर्फ पेड़ ही नहीं होता है बाल्कि यह धरती का संतुलन बनाए रखने के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था भी हैं। वन के साथ वह जैव-विविधता भी है जो पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखने के लिए जरूरी हैं।

वन्य जीवों की लाखों-करोड़ प्रजातियों, वानस्पतिक विविधता, फल-फूल और जड़ी-बुटियां तो हैं ही, पूरे वायुमण्डल को बनाए रखने में भी वनों की अपनी भूमिका होती है। यह सब वन लगाने के लिए किये जा रहे प्रयासों से ही सम्भव है। वन रहेंगें तो जमीन भी बची रहेगी और धरती का जल स्तर भी बना रहेगा।

रियो डि जेनेरो में जैव विविधता संधि की घोषणा के 4 वर्ष बीत जाने पर भी जव देश की जैव सम्पत्ति की लूट, तस्करी और पेटेंट के जरिए उस पर कब्जा करने की कोशिश रोकने वाला कानून नहीं बन पाया तो डा० सुमन सहाय की अगुआई में 'जीन कैंपेन' ने इस दिशा में अभियान छेड़ दिया। उन्होंने जागरूकता पैदा करने के लिए लेख लिखे और सभाएं की ।आज डा० सुमन सहाय 'जीन कैंपेन' का पर्याय बन चुकी हैं। ज्ञातव्य है कि अभी तक करोड़ डालर की जैव सम्पदा यहां से विदेशों को जा चुकी है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू० एन० डी० पी०) के अनुसार विकासशील देशों में हरसाल करीब 5.5 अरब डालर के जैव संसाधन विकसित देशों को चले जाते हैं जिनमें बहुत बड़ा हिस्सा भारत का होता हैं। डा० सहाय को जैव संपदा के असली परिरक्षकों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कराने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा है।

भारत का पश्चिमी घाट और उत्तर पूर्वी क्षेत्र विश्व के 12 'हाटपॉट' क्षेत्रों में गिना जाता है। विशेषकर अरूणाचल प्रदेश का लगभग 65 प्रतिशत भाग अभी भी वनाच्छादित है। यहां की जन जातियों में से एक प्रमुख

जनजाति 'आपातानी' है जो महिलाओं द्वारा शंकुवन एवं बाँस बन का एक साथ पर्यावरण संरक्षण हेतु खेती करती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण में मुख्य योगदान नार्वे की प्रधानमंत्री श्रीमती ग्रो हाटलेम ब्रुटलैण्ड का रहा है। उन्होंने पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग की अध्यक्षता की। उनके महत्वपूर्ण एवं योजनावद्ध प्रयास ने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान सर्वप्रथम अपनी ओर खीचा। उन्होंने आयोग के जरिए जैव विविधता की आवश्यकता एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु लम्बी अवधि की योजनाओं की रूपरेखा तैयार की। इसमे आर्थिक विकास हेतु आर्थिक योजनाओं के साथ पर्यावरणीय क्रिया कलाओं को भी सम्मिलित करने की अनुशंसा की गई। बुटलैण्ड रिपोर्ट–'आवर कामन फ्यूचर' (1987) ने सतत विकास की एक नई परिभाषा दी। यह बुटलैण्ड आयोग द्वारा दी गई अनुशंसाओं का ही परिणाम था जिसके क्रियान्वयन वयन हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ ने पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन बुलाया।

इसमे कोई शक नहीं है कि महिलाओं ने 'चिपको', 'मैती', जीनकैंपेन आदि पर्यावरणीय आंदोलनों के जरिएं पर्यावरण संरक्षण को एक नई दिशा दी है। सुश्री मेधा पाटकर एवं बुकर पुरस्कार प्राप्त श्रीमती अरूंधती राय द्वारा 'नर्मदा बचाओं' आंदोलन इसी का अगला पड़ाव हैं। इसमें भले ही कुछ भ्रांतियां हो परन्तु हैं तो वह एक आम आदमी के हक एवं पुनर्स्थापन की लड़ाई। महिलाओं का यह प्रयास अब एक जन आंदोलन का रूप ले लिया हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि देश के अन्यभाग की युवातियां 'मैती' के प्रयासों को और आगे बढ़ाएं जिससे पर्यावरण को संरक्षित किया जा सके।

- नंगी धरती करे पुकार।
  वृक्ष लगाकर करो श्रृंगार।। –(मनोज कु. सिंह)
- प्राण-वायु के हैं वृक्ष आधार।
  करें न हम इनका, निर्मम संहार।। –(सुरेश चन्द्र शर्मा)
- पर्यावरण, प्रकृति की जान।
  बनाये रखना, इसकी शान।। –(राजेश मोहन)
- रोटी, कपड़ा और मकान।
  सबको दाना, वन महान।। –(विजय गुप्ता)

कुकरौन्धा (ब्लूमिया लैसेरा) एक औषधीय पौधा विशेषतः बवासीर निदानक

कृष्ण कुमार खन्ना एवं अजय कुमार झा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

आजकल की व्यस्त दिनचर्या में मनुष्य अपने खान-पान पर ध्यान नहीं दे रहा है। परिणामस्वरूप वह अनेक व्याधियों से ग्रसित होता जा रहा है। हांलाकि आज के वैज्ञानिक युग में रोगों के निदान के लिये आधुनिक रसायनिक दवायें एवं शल्य चिकित्सायें उपलब्ध है, किन्तु फिर भी पादप-औषधियां अनेक रोगों के निदान के लिये कारगर सिद्ध होती है क्योंकि वह या तो परम्परा पर आधारित है या युगों से जनजातियों एवं लोकमान्यताओं द्वारा प्रयोग में लायी जा रही है। ऐसी ही एक औषधीय पादप जाति कुकरौन्धा (*ब्लूमिया लैसेरा* है जो अनेक रोगों के निदान के लिये प्रचलित एवं कारगर है। विशेषतः उत्तर एवं मध्य भारत में इसका उपयोग बवासीर के निदान के लिये अत्यधिक प्रचलित है।

कुकरौन्धा एस्टेरेसी कुल का सदस्य है। यह उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बिहार तथा उड़िसा में बहुतायत से मिलता है। यह एक वर्षीय, उच्छीर्ष पौधा है जिसकी ऊँचाई 30-80 सेमी होती है। तने पर घने ग्रन्थिल रोम होते है। पत्तियाँ सरल, एकान्तरक्रम में व्यवस्थित, तथा दीर्घवृत्तीय होती है। इनके किनारे अच्छिन्न अथवा पालित, शीर्ष निशिताग्र तथा पालियाँ अनियमित रूप से ऋकची-दत्तुर होती है। ये 3 से 13 सेमी लम्बी तथा 1.2 से 5 सेमी तक चौड़ी हो सकती है एवं इनकी दोनों सतहों पर ग्रन्थिल रोम पाये जाते है। कुकरौन्धा में भुण्डक पुष्पक्रम मिलता है जिसका व्यास लगभग 3.5 सेमी होता है तथा ये अक्षीय एवं शीर्षस्थ समूहों में व्यवस्थित होते है। रश्मिपुष्पक लगभग 3 मिमी लम्बे एवं बिम्ब पुष्पक 3.5 मिमी लम्बे होते है। एकीन लगभग 0.5 मिमी लम्बे तथा रेखीय होते है।

बवासीर में प्रयोग के लिये इसकी पत्तियों को छाँव मे सुखाकर पीस लेते है। पिसी हुई पत्तियों को कागज में लपेटकर सिगरेट की तरह बनाकर भोजन के उपरान्त पीने से बवासीर में आराम मिलता है। साथ ही साथ इस सूखे चूर्ण को भोजन के उपरान्त पानी के साथ निगलने से भी लाभ होता है। दूसरी ओर इसकी ताजी पत्तियों को पीसकर बनाये गये लेप को कपड़े के टुकड़े में लगाकर गुदा पर रखने से भी लाभ मिलता है।

इसके अतिरिक्त यह पौधा क्ई अन्य रोगों के लिए भी उपयोगी है। इसकी पत्तियों को पीसकर लेप को कटी-छिली त्वचा तथा घावों पर लगाने से लाभ मिलता है। इसकी पत्तियों का रस आंतों में पाये जाने वाले कृमियों को बाहर निकालने में उपयोगी पाया गया है। साथ ही साथ पत्तियाँ ज्वरनाशक, प्रदाहनाशक, वायुनाशक तथा यकृत रोंगों में भी लाभकारी होती है। उपरोक्त उपयोगों के अतिरिक्त यह पित्त एवं कफ, उदरपीड़ा, श्वेतप्रदर, फेफड़ों की सूजन, हैजा तथा श्लेष्मा के प्रदाह में भी लाभकारी होता है।

———————

कृषि वानिकी (एग्रोफॉरेस्ट्री)–एक नवीन धारणा

अजय कुमार झा एवं कृष्ण कुमार खन्ना
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

सरल शब्दों में वनीय वृक्षों तथा फसलों की संयुक्त कृषि को कृषिवानिकी या एग्रोफॉरेस्ट्री कहते है। जबकि विस्तृत रूप में कृषि वानिकी एक प्रतिपालनीय भूमि प्रबन्ध तंत्र है जो भूमि की उत्पादन शक्ति को बढ़ाता है एवं एक साथ अथवा क्रमिक रूप में फसलों (वृक्षीय फसलों सहित) तथा वन पौधो तथा/अथवा जन्तुओं के उत्पादन को जोड़ता है। साथ ही साथ स्थानीय समुदाय द्वारा प्रयोग की जाने वाली कृषि रीतियों के अनुरूप प्रबन्धरीतियों को प्रवृत करता है।

नम उष्ण क्षेत्रों में वृक्षों के रक्षण के अभाव में एक बर्षीय खाद्य फसलों का उत्पादन प्रायः कठिन होता है। इन क्षेत्रों की मृदा मे पोषक तत्व शीघ्र रिसकर नीचे चले जाते है तथा इस क्षय को कृत्रिम रूप से पूरित करने का प्रयास किया जाता है, जबकि परम्परागत लघुस्तरीय तंत्रों के लिए यह निषेधार्थक है। वृक्षों के बिना सम्पूर्ण जैविक तथा भौतिक पर्यावरण शीघ्र विघटित हो जाता है। नम उष्ण क्षेत्रों की जंगली वनस्पतियों में वृक्षों का प्रमुख स्थान है तथा फसल उत्पादन अथवा पशुपालन अथवा दोनों के साथ वृक्ष उत्पादन के लिए समान भूमि का बहुप्रयोग, नम उष्ण मृदा की संरचना एवं उर्वरा शक्ति तथा जैविक एवं भौतिक पर्यावरण के अन्य घटकों के संरक्षण के लिए प्रयोग की जाने वाली कम-लागत की तकनीकी में सर्वश्रेष्ठ है। साथ ही उष्ण विकासशील देशों में जनसंख्या की वृद्धि के साथ भूमि एक सीमित संसाधन होती जा रही है तथा योजनाकर्ताओं का ध्यान अपेक्षाकृत कम महत्व के उत्पादन क्षेत्रों पर आकर्षित हो रहा है। कम महत्व की भूमि पर प्रतिकूल जैविक तथा भौतिक दशाओं में भी फसलों के साथ वृक्षों के उचित अन्तरारोपण से शुद्ध पारिस्थितिक लाभों के अतिरिक्त फसल उत्पादन तथा वृक्षों की खाद्य एवं अन्य वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता में वृद्धि सर्वविदित है। नम उष्ण पर्यावरण के सम्पूर्ण दोहन में वृक्षों की संभावित भूमिका महत्वपूर्ण है।

कृषिवानिकी के प्रकार

घटकों की प्रकृति के आधार पर भारत में कृषिवानिकी का विस्तृत विवरण निम्नांकित है-

(1) एग्री-सिल्वीकल्चर : यह फसलों तथा वृक्षों को जोड़ता है।
(2) एग्री-हॉर्टीकल्चर : यह फसलों तथा फल प्रदान करने वाले वृक्षों को जोड़ता है।
(3) एग्री-सिल्वीपाश्चर : यह फसलों, वृक्षों तथा चारागाहों को जोड़ता है।
(4) एग्री-हॉर्टी-सिल्वीकल्चर : यह फसलों, फल प्रदान करने वाले वृक्षों तथा बहु उद्देश्यीय वृक्षों एवं झाड़ियों (एम.पी. टी. एस.) को जोड़ता है।
(5) सिल्वीपाश्चर : यह चारा प्रदान करने वाले वृक्षों तथा चारागाहों/जन्तुओं को जोड़ता है।
(6) एग्री-हॉर्टी-पाश्चर : यह फसलों, फल प्रदान करने वाले वृक्षों तथा चारागाहों का जोड़ता है।
(7) हॉर्टीपाश्चर : यह फल प्रदान करेन वाले वृक्षों तथा चारागाहों को जोड़ता है।
(8) सिल्वी-हॉर्टीपाश्चर : यह बहुउद्देश्यीय वृक्षों एवं झाड़ियों, फल प्रदान करने वाले वृक्षों तथा चारागाहों को जोड़ता है।

भारत में कृषिवानिकी का महत्वः

(1) भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों की शुष्क तथा अर्द्धशुष्क भूमि में गर्म वायु लाखों टन महत्वपूर्ण

ऊपरी मृदा को उड़ा ले जाती है, जबकि प्रकृति द्वाराइस मृदा के निर्माण में शताब्दियाँ लग जाती है। यदि वृक्षों को रक्षक-पट्टी के रूप में रोपित किया जाता है तो वे वायु को अपनी ऊँचाई से बीस गुना अधिक दूरी तक विस्थापित कर देते है। रक्षक-पट्टियों से वायु की गति 20 से 46 प्रतिशत कम हो जाती है तथा ऐसा पाया गया कि इनके द्वारा रक्षित भूमि पर अरहर, बाजरा तथा मूँगफली का उत्पादन अरक्षित फसलों की तुलना में अधिक होता है।

राजस्थान तथा गुजरात के शुष्क क्षेत्रों में खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) को कुछ फसलों जैसे बाजरा, मूँग तथा मोठ के साथ उगाने के लिए सर्वोत्तम पाया गया है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में खेजरी के 10 वृक्ष, जबकि पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्र में इसके 120 वृक्ष एक हैक्टअर भूमि के लिए पर्याप्त होते है। इन क्षेत्रों में फसलों के साथ उगाने के लिए झाड़िया बेर *(ज़िज़ाइफस न्यूमुलेरिया)* भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में कृषिवानिकी के लिए बेर (*जिज़ाइफस मॉरिशियाना*) भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। ऐसा देखा गया है कि बेर के वृक्षों की पट्टियों के बीच में रोपित सेम की फसल का उत्पादन 5 क्विंटल फली प्रति हेक्टेअर बढ़ जाता है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि खेजरी *(प्रोसोपिस सिनेरेरिया)* तथा इस्राइली बबूल (एकेशिया टॉर्टीलिस) के वृक्षों को 400 वृक्ष प्रति हेक्टअर के घनत्व से रोपित करने से उनके मध्य एक उन्नत चारागाह विकसित करके ईधन की लकड़ी प्राप्त की जा सकती है। चूँकि प्रूनिंग के पश्चात वृक्षों में पुनः वृद्धि हो जाती है, अतः एक वृक्ष को पूर्णतया काटने की तुलना में उसकी बारम्बार प्रूनिंग करके अधिक मात्रा में लकड़ी प्राप्त की जा सकती है। पत्तियों का पशुओं के चारे तथा मल्श के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। मल्श का मृदा की संरचना में सुधार, वाष्पीकरण में कमी, जल वहन क्षमता में वृद्धि तथा मृदा को जैविक कार्बन एवं पोषक तत्वों से परिपूर्ण करने में उपयोग होता है।

कृषिवानिकी के लाभ इन क्षेत्रों के अतिरिक्त दूसरे क्षेत्रों में भी पाये गये है। सौराष्ट्र के अधिक वर्षा वाले काली मृदा के क्षेत्रों में सू-बबूल या विलायती बबूल (ल्यूसीना ल्यूकोसिफेला) की पट्टियों के मध्य उगायी गयी मुँगफली, मूँग तथा ऊर्द की फसलें अधिक उत्पादन देती है।

(2) राष्ट्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान केन्द्र, झाँसी में किये गये अनुसंधानों के अनुसार कृषि फसले 12 बहुऊद्देश्यीय वृक्षों (500 से 1250 वृक्ष प्रति हेक्टेअर) मुख्यतः रामकाँटी (*एकेशिया निलोटिका* उपजाति *क्यूप्रेसीफॉर्मिस*) तथा *कैजुएराइना इक्वीसेटीफोलिया* के साथ सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। ज्वार, मूँगफली तथा गेहूँ को बेर, अनार, नीबू की किन्नो उपजाति एवं अमरूद (100 से 400 वृक्ष प्रति हेक्टेअर) तथा बहुउद्देश्यीय नाइट्रोजन स्थिरीकारक वृक्षों जैसे सू-बबूल (*ल्यूसीना ल्यूकोसिफेला*, 250 से 300 वृक्ष प्रति हेक्टेअर) के साथ उगाया जा सकता है। इसमें फसलों की उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है।

आगरा में किये गये अध्ययनों के अनुसार रोपण के पूर्व मृदा में सू-बबूल की पत्तियों के सम्मिलन से गेहूँ की फसल में 15 से 23 प्रतिशत की वृद्धि होती है। अनुपजाऊ मृदा में उगायें गये गेहूँ-लोबिया-गेहूँ सस्यावर्तन की लगभग आधी नाइट्रोजन आवश्यताओं की पूर्ति सू-बबूल करता है।

बंजर भूमि पर *सेन्क्रस* तथा *स्टाइलोजैन्थिस* इस्राइली बबूल (*एकेशिया टार्टिलिस*, 300 वृक्ष प्रति हेक्टेअर) के साथ कृषि करने पर 3.0 से 3.5 टन प्रति हेक्टेअर प्रति वर्ष चारे का तथा वृक्ष घटक द्वारा 7 टन प्रति हेक्टेअर प्रति वर्ष लकड़ी का उत्पादन किया जा सकता है। लकड़ी तथा पशुचारा प्रदान करने वाले वृक्षों जैसे अंजन *(हार्डविकिया बाइनेटा)* तथा सिरिस *(एल्बीजिया लिबेक)* के साथ भी उन्नत चारागाह विकसित किये जा सकते है। विघटित बंजर भूमि के सुधार के लिए लकड़ी तथा चारा प्रदान करने वाले वृक्षों की उपयुक्त जातियों जैसे *एकेशिया निलोटिका* उपजाति *क्यूप्रेसीपॉर्मिस*, *ल्यूसीना ल्यूकोसिफेला*, *डेन्ड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस*, *डाइक्रोस्टैकिस सिनेरिया*, *एल्बीज़िया एमारा*, *डैल्बरजिया सीसू* आदि की संस्तुति की गई है।

(3) सोलन में पाया गया है कि 5 x 5 मी० की दूरी पर रोपित पॉपलर *(पॉपुलस एल्बा)* वृक्षों के मध्य के स्थान में गेहूँ सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। पूर्वी हिमालय क्षेत्र में मक्का/अदरख तथा सोयाबीन/

अदरख का यूटिस *(एल्नस निपालेन्सिस)* के साथ उगाना लाभप्रद है। सिक्किम में बाँस के द्वारा छायित भूमि में अदरख तथा हल्दी की कृषि लाभप्रद है। देहरादून में कैम्फर *(सिनेमोमम कैम्फोरा)* तथा सागौन *(टेक्टोना ग्रैन्डिस)* को सरसो के साथ 6-8 मी० की दूरी पर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

करनाल क्षेत्र की ऊसर एवं क्षारीय भूमि का काबुली कीकर *(प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा)* के साथ करनाल-घास *(डिप्लैक्ने फस्का)* उगाने में प्रभावी रूप से उपयोग किया गया है। अनुसंधानों में विदित हुआ है कि जयन्ती *(सेस्बानिया सेस्बान)* मृदा को पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन प्रदान करती है।

(4) छोटा नागपुर तथा पश्चिम बंगाल के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में ऑस्ट्रेलियन बबूल *(एकेशिया ऑरिकुलीफॉर्मिस)* के साथ उगाने पर मक्के की फसल में 10.2 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर की वृद्धि होती है। इसी प्रकार अमरूद+चंदन एवं अमरूद + शीशाम भी अधिक उत्पादन देते है।

उड़ीसा में लीची + पत्तागोभी तथा नीबू + पत्तागोभी के मध्य कुछ स्थानों पर जयन्ती तथा सू-बबूल उगाकर अधिक उत्पादन किया जा सका है।

निष्कर्ष :

लघुस्तरीय कृषि व्यवसायों में कृषिवानिकी की विस्तृत बहुउद्देश्यीय संसाधन प्रयोग धारणा का अनुप्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि इनमें पहले से ही ईधन की लकड़ी, पशुचारा, खाद्यफल, फलियाँ व पत्तियाँ, मृदा के स्थिरीकरण व उर्वराशक्ति में सुधार एवं निर्माण व अन्य कार्यो में उपयोगी लकड़ी के लिए विविध फसले उगायी जा रही है। विस्तृत रूप में विचार करने पर विदित होता है कि कृषिवानिकी की सहायता से कृषि उत्पादन में वृद्धि व विविधता लायी जा सकती है, पारिस्थितिकीय रूप में सार्थक कृषि-पारिस्थितिक तंत्रों को प्रेरित किया जा सकता है, तथा ग्रामीण व्यवसायों के लिए अवसरों में विविधता का समावेश किया जा सकता है। यद्यपि नम उष्णकटिबन्धीय तथा शुष्क क्षेत्रों के अनेक भागों में इसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है तथा देश के अन्य क्षेत्रों में भी इसके अच्छे परिणाम आने की संभावना है, किन्तु अपेक्षाकृत आदर्श एवं अस्थायी एकल संवर्द्धन को विस्थापित करके उसके स्थान पर इस प्रकार के विविध पारिस्थितिक तंत्र की स्थापना के लिए राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक संकल्पशक्ति एवं समर्पण, कृषि एवं वानिकी का पूर्णसंगठित राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय प्रशासन, वानिकी अधिकारियों के अनुसंधान व प्रशिक्षण में वृद्धि, कृषि व वानिकी सेवाओं में वृद्धि तथा लघुस्तरीय कृषकों में संकल्पशक्ति व अनुशासन के समावेश की आवश्यकता होगी।

———————

जलवायु परिवर्तन और उसका वनस्पतियों पर प्रभाव

हरीश सिंह 'भुजवान'
केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावड़ा

परिवर्तन प्रकृति का सत्त नियम है इसीलिए जलवायु में भी शनैः शनैः परिवर्तन होना तर्क संगत ही प्रतीत होता है। किन्तु इस परिवर्तन के कारण हुए कुछ अप्रत्याशित घटनाओं जैसे संयुक्त अरब अमीरात में बर्फ का पड़ना, अन्टार्टिका में घास उगना, यूरोप में गर्म हवाओं से 25,000 लोगों का मारा जाना, दक्षिण एशिया में सुनामी कहरों से लाखों जनों का कालग्रसित होना, इन्डोनेशिया व बोर्नियों में हजारो कि० मी० जंगलों में आग लगना आदि हमें जलवायु परिवर्तन के कारणों व उसके दुष्प्रभावो के बारे में गहन मन्थन करने पर मजबूर करते हैं।

जलवायु से यहाँ हमारा अभिप्राय मौसम से है। आज मौसम विज्ञानी भी उच्च तकनीकी एवं वैज्ञानिक ज्ञान के बावजूद मौसम परिवर्तन की सही पूर्व जानकारी देने में पूर्ण रूप से सक्षम नहीं दिखते है। अधिकतर जब क्षेत्र में बारिस हो जाती है तब मौसम विभाग मानसून सक्रिय होने की खबर प्रसारित करता है। जबकि हमारे बुर्जुग लोग तो वर्षा, गर्मी, जाड़ा या वसन्त के शुरु व पूर्ण होने की निश्चित तिथि तक पहले ही बता दिया करते थे और ठीक उसी तिथि को ऐसा परिवर्तन होता भी था। आखिर कैसे? इसका कारण स्पष्ट है कि उस समय तक हमने इस प्रकृति के साथ इतना छेड़ छाड़ नहीं किया था, इसे इतना प्रदूषित भी नहीं किया था, इतनी जनसंख्या नहीं बढ़ाई थी, इतने कारखाने नहीं खोले थे और इतना वनो का विनाश भी नंही किया था। दूसरे शब्दों में कहें तो आज का ये कथित रूप से सभ्य कहलाने वाला मानव ही इस मौसम परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण है।

पिछले कई वर्षों से हम अपने देश मे ही देख रहे है कि एक ही मौसम में कुछ राज्यों में सूखा पड़ता रहता है तो दूसरे राज्यों में बाढ़ का भयंकर प्रकोप दिखाई देता है। वसन्त ऋतु का समय पूर्व आगमन, गर्मी का अत्यधिक बढ़ जाना, वर्षा ऋतु का समय परिवर्तन तथा शीत काल का समय चक्र कम होना तो अब लगभग हर वर्ष ही अनुभव किया जा सकता है। यही नही, पर्वतीय क्षेत्रों में भी तापमान का बढ़ाना व बर्फ का कम मात्रा में गिरना भी एक साधारण बात किन्तु चिन्ता का विषय हो गया है। अब प्रश्न उठता है कि ये जलवायु परिवर्तन क्यों हो रहा है? इसका प्रथम व मुख्य कारण भूमण्डल स्तर पर ग्रीन हाउस प्रभाव है। सूर्य से आने वाली ऊर्जा के साथ पैरा बैगनी किरणे ओजोन परत से वापस जाने तथा बादलों द्वारा अवशोषित होने के पश्चात भी पृथ्वी पर पहुँचने में सक्षम हो रही है। इस प्रकार लगातार कुछ ग्रीन गैसों जैसे कार्बन डाइ आक्साइड (Co_2), जल वाष्प, क्लोरो फ्लोरो कार्बन, नाइट्रस आक्साइड तथा मीथेन के उत्सर्जन में भारी वृद्धि के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। एक अनुमान के अनुसार पिछले 100 वर्षो में विश्व का तापमान 0.6°C तक बढ़ गया है। इस 'ग्लोबल वारमिंग' के कारण ही हिमालय तथा अंटार्कटिका प्राय द्वीप के हिम खण्ड द्रूत गति से पिघल रहे है जिससे नदी व समुद्र के किनारे बसे लोग भीषण बाढ़ जैसे प्राकृतिक आपदा का शिकार हो रहे हैं। नासा (NASA) के अनुसार आर्कटिक क्षेत्र में चार गुना तापमान बढ़ने से 1960 से वहाँ का 40 प्रतिशत बर्फ पिघल गया है। इसी प्रकार पिछले 60 वर्षो में चीली और अर्जेंटिना के दक्षिण में स्थित अंटार्कटिका में तापमान में अप्रत्याशित वृद्धि के कारण लगभग 13,500 वर्ग कि० मी० क्षेत्र के हिमखण्ड पिघल गये हैं। डब्लू. डब्लू. एफ. की एक नई रिपोर्ट के अनुसार भारतवर्ष में गंगा नदी के उद्गम स्थल गोमुख ग्लेशियर भी विगत 30-35 वर्षों से 23 मीटर प्रतिवर्ष की दर से पिघल रहा है अर्थात् आने वाले 100 वर्षों में गंगा का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा? इसी दर से गर्मी बढ़ती रही तो सन 2100 तक

समुद्र का तल आधा मीटर बढ जायेगा जिससे बंगला देश जैसे छोटे देश तो डूब ही जायेगें तथा आगामी 30 वर्षो में सुन्दरवन का 18,500 एकड़ भाग भी समुद्री बाढ़ की चपेट में आ जायेगा जिससे कई मेनग्रुव प्रजातियां व रायल बंगाल टाइगर लुप्त हो जायेगे। इसके दूरगामी दुष्परिणाम से कुछ वर्षो बाद नदियों में पानी की कमी होती जायेगी जिससे लोगों को आर्थिक एवं पर्यावरण तन्त्र सम्बन्धित समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

इन ग्रीन गैसों में कार्बन डाइ आक्साइड की मुख्य भूमिका है। इस वायुमण्डल में सिर्फ जीवाश्म ईधन (Fossil Fuel) द्वारा ही 22 विलियन टन CO_2 प्रतिवर्ष फैलाई जा रही है। पेड़ पौधों द्वारा प्रकाश संशलेषण की क्रिया में जो CO_2 अवशोषित कर ली जाती थी वह भी वनो के लगातार कटान के कारण इसी वातावरण में एकत्र हो रही है। जनसंख्या वृद्धि से CO_2का बढ़ना तो सर्वविदित ही है। एक वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार इसी दर से CO_2 के बढ़ते रहने से इस सदी के अन्त तक मूंगे की चटटाने (Coral reefs) गायब होने तथा उष्ण कटिबंध से उत्तरी क्षेत्र की ओर बहने वाली गर्म हवाओं के अपना रास्ता बदलने की आशंका व्यक्त की गयी है।

क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC) के बढने से हमारे प्राकृतिक छत्र रूपी 'ओजोन परत' को लगातार नुकसान हो रहा है। पिछले 6 वर्षो में ओजोन परत के 2.4 करोड़ वर्ग कि० मी० क्षेत्र में छिद्रों का पाया जाना भी मौसम परिवर्तन का एक निश्चित कारण है। मौसम परिवर्तन का एक बड़ा कारण प्रदूषण भी है। आज इस धरा पर शायद ही ऐसा कोना बचा हो, जहाँ प्रदूषण अपनी काली छाया न फैला पाया हो। वाहनों एवं कारखानों की संख्या में निरन्तर वृद्धि प्रदूषण की गति को तीव्र करने में सहायक सिद्ध हो रही हैं। आज के युग में हम स्वच्छ वायु (नाइट्रोजन 78.09%, ऑक्सिजन 20.95%, आर्गन 0.93% कार्बन 0.93% तथा नियान 0.0018%) की मात्र कल्पना ही कर सकते है जबकि एक स्वस्थ्य मनुष्य जो दिन में लगभग 22 हजार बार सांस लेता है उसे साढे सोलह कि. ग्रा. स्वच्छ वायु की आवश्यकता होती है। उपरोक्त के अतिरिक्त प्राकृतिक रूप से उगने वाले चौडी पत्तियों वाले जंगलों की जगह यूकेलिप्टस जैसे पतली पत्तियों वाले व्यवसायिक महत्व के पेड़ो को लगाने से भी मौसम परिवर्तन की गति में तेजी आ रही है।

इस जलवायु परिवर्तन का हमारे वनस्पति जगत पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस परिवर्तन का समस्त वनस्पति वर्ग जैसे जीवाणु, विषाणु, कवक, लाइकेन, ब्रायोफाइट, टेरिडोफाइट, जीम्नोस्पर्म तथा एन्जियोस्पर्म के जीवनकाल में बुरा प्रभाव ही पड़ रहा है। पेड़ पौधों के बीज जमाव, अंकुरण, वृद्धि पुष्पकाल, फल निर्माण, बीज निर्माण, प्रसारण तथा उनके उत्पाद पर होने वाले दुष्प्रभाव पर अनेक वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन कर इसे सिद्ध भी किया जा चुका है। वनस्पति शास्त्री डा० आर० सी० श्रीवास्तव ने भी सन 2003 में इलाहाबाद में अचानक तापमान घटने का लगभग 100 आवृत बीजी पौधों पर अध्ययन कर पाया कि 50 प्रतिशत पौधों में तुरन्त पतझड़ हो गया और कुछ में 'ब्लाइट' का प्रकोप आ गया तथा कुछ में पत्तियां मुरझा गयीं।

मैने स्वयं महसूस किया कि पहले 5-6000 फीट की उँचाई वाले स्थानों में प्रत्येक वर्ष शीत काल में 3-4 फीट बर्फ अवश्य गिरती थी किन्तु अब कई वर्षो से बर्फ बारी की मात्रा में लगातार कमी आ रही है जबकि हार्टिकल्चरिष्ट के अनुसार इस क्षेत्र में सेव के अच्छे उत्पादन के लिए कम से कम तीन सप्ताह तक शून्य से कम तापमान होने से ही सेव के पेड़ो में अधिक कलियां फूटती है जिससे स्वाभाविक रूप से सेव के फल की उत्पादकता बढ जाती है। आज से 20-25 वर्ष पहले जो सेव के बगीचे 5-6000 फीट पर थे उनमे सेव का उत्पादन अधिकतम होता था और 8-9000 फीट की ऊंचाई पर सब के फल-फूल तो दूर कड़ाके की ठंड की वजह से सेव के पेड़ तक जीवित नंही रह पाते थे। किन्तु जलवायु परिवर्तन के कारण वर्तमान में 8-9000 फीट की ऊँचाई पर सेव की भरमार हो रही है और 5-6000 फीट पर उत्पादन में निरन्तर कमी पायी जा रही है। इसी प्रकार पर्वतीय क्षेत्र में आलू की फसल भी पहले कम ऊँचाई वाले स्थानों में अच्छा उत्पादन

देती थी किन्तु वर्तमान में 10,000 फीट पर आलू की खेती अधिक लाभ दे रही है। इस क्षेत्र के लोग आलू को ताजा रखने हेतु माह नवम्वर से मार्च तक गढढों में रखते थे किन्तु आजकल गर्मी बढ़ने के कारण आलू को गढढों में रखने से वह या तो सड़ जाते है या अंकुरित हो जाते हैं। मौसम परिवर्तन के कारण ही शीतकाल में सेव आड़ू, प्लम, खुबानी आदि के वृक्षों पर फूल खिलने की अनोखी घटनायें देखी जा रही हैं। इसी वजह से गेंहू के बीजों का पौधों पर ही अंकुरित होना, उनका काला पड़ जाना, कुकरविटेसी परिवार के सब्जियों व टमाटर तथा प्याज का सड़ जाना तो साधारण बात हो गयी हैं।

कृषि एवं औद्योगिक फसलो के अतिरिक्त औषधीय पौधों पर भी मौसम परिवर्तन का दुष्प्रभाव महसूस किया गया है। अतीस, मीठा, कटूकी, सालम पंजा, सालब-मिश्री आदि पहले 10,000 फीट की ऊँचाई तक नैसर्गिक रूप में बहुतायत में उगती थी, अब उस ऊंचाई पर बहुत कम मिल रही है या अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में मिल रही है। इनके औषधीय तत्व भी मौसम परिवर्तन के कारण क्षीण होते जा रहे हैं। इसी कारण बद्रीनाथ धाम के पास प्राकृतिक रूप से उगने वाली तुलसी (*Origanum Vulgare*) की सुगन्ध क्षमता में भी इधर कुछ वर्षो से कमी अनुभव की जा रही है। इस जलवायु परिवर्तन के कारण पर्वतीय क्षेत्र के आकर्षक देवदार, चीड़, रागा, सुरई आदि वृक्ष तो अपना सुन्दर शंकुधारी स्वरूप ही खोकर झाड़ीनुमा रूप ले रहे हैं।

जलवायु परिवर्तन से वनस्पति जगत को हो रहे नुकसान को कम करने के लिए हमें प्राकृतिक वनो के अवैज्ञानिक दोहन पर रोक लगाकर उनके संरक्षण व संवर्धन पर विशेष जोर देने, कारखानों से निकलने वाले विषैल गैसों व कचरों को रोकने या शोधित करने, विकास के नाम पर हो रहे विनाशकारी निर्माण कार्यों को रोकने, जनसंख्या वृद्धि को कम करने तथा जनसाधारण को इस परिवर्तन के कारणों, हानि व समाधान के बारे में जागरूक करने का भगीरथ प्रयास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कृषिक्षेत्र में रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक की जगह जैविक संसाधनों का अधिक उपयोग करने तथा वैज्ञानिकों को किसानों के लिए रणनीतिक बीज (Strategic seeds) को विकसित करने का भी प्रयास करना चाहिए।

इस प्रकार इस मन्द जहर (Slow poison) रूपी जलवायु परिवर्तन की गति रोकने का समय रहते प्रयास न किया जाय तो वह दिन दूर नहीं होगा जब हम लोग भयंकर बिमारियों, चिलचिलाती गर्मी तूफान, बाढ़, सूखा, भूकम्प, सूनामी, ज्वालामुखी जैसे प्राकृतिक आपदाओं की आगोश में आ जाने के अलावा इस भू-मण्डल से अमूल्य जैव विविधता को भी सदा के लिए खो देगें।

————————

नक्षत्र पौधे

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

खगोलीय अवधारणा पर आधारित पारिस्थितिक संरचना को प्रभावित करनेवाले नक्षत्र पौधे सदियों से साहित्यिक, आध्यात्मिक, पर्यावरणविद् एवं वैज्ञानिको को अपनी ओर आकर्षित करता आया है। प्राचीन भारत में ग्रहों के प्रतिदिन के स्थितिज्ञान का दैनिक जीवन में बहुत महत्व था जैसे मौसम पूर्वानुमान, कृषि कार्य, दैनिक जीवन, मानव स्वास्थ्य, फलित ज्योतिष इत्यादि।

आंकड़ों के अनुसार अभी तक भारतवर्ष में केवल दो नक्षत्र वन स्थापित किए गए हैं पहला कर्नाटक, दूसरा झारखण्ड ओर तीसरा कोलकाता में बन रहा हैं।

मनुष्य और वृक्षों का अटूट संबंधं सदियों से रहा है। हमारे मनीषियों ने मानव जीवन, खगोल पिण्ड तथा पेड़ पौधों के बीच तारतम्य के आधार पर कतिपय पारिस्थितिक संरचनाओं को नक्षत्र एवं राशि से भी जोड़ा है। चंद्रमा 273 दिनों में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय ज्योतिषविज्ञानवेताओं ने आकाश को 27 भागों में विभक्त किया है एवं दृष्टिगत योगतारा से उन्हें पहचाना एवं प्रत्येक भाग के इसी तारा समूह को नक्षत्र के रूप में गठित किया। भारतीय मनीषियों ने आकाश में स्थित नक्षत्रों का संबंध धरती पर स्थित वनों से जोड़ा है। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं ज्योतिष विज्ञान के अनुसार 27 नक्षत्र धरती पर 27 संगत वृक्ष के रूप में अवतरित है। इन्हीं वृक्षों को नक्षत्रों का वृक्ष कहा जाता है। सभी नक्षत्रों के वृक्षों को एक साथ लगाने से इनके सूक्ष्म प्रभावों में संतुलन स्थापित रखता है जो हर किसी के लिए लाभकारी होता है।

तालिका–१

क्रमसंख्या	नक्षत्र का नाम	वृक्ष का हिन्दी नाम	वैज्ञानिक नाम
1.	अश्विनी	आंवला	*Emblica officinalis*
2.	भरिणी	युग्म वृक्ष	*Ficus* spp.
3.	कृतिका	गूलर	*Ficus glomerata*
4.	रोहिणी	जामुन	*Syzygium cumini*
5.	मृगशिरा	खैर	*Acacia catechu*
6.	आर्द्रा	पाकड़	*Ficus infectoria*
7.	पुनर्वसु	बाँस	*Dendrocalamus-Bambusa* Sp.
8.	पुष्य	पीपल	*Ficus religiosa*
9.	आश्लेषा	नागकेसर	*Mesua ferrea*
10.	मघा	बरगद	*Ficus bengalensis*
11.	पूर्वफाल्गुनी	पलास	*Butea monosperma*
12.	उत्तराफाल्गुनी	रूद्राक्ष	*Elaeocarpus gantirus*
13.	हस्त	रीठा	*Sapindus mukorrossi*
14.	चित्रा	बेल	*Aegle marmelos*

15.	स्वाति	अर्जुन	*Terminelia arjuna*
16.	विशाखा	विकंकत	*Flacourtia indica*
17.	अनुराधा	मौलश्री	*Mimusops elengi*
18.	ज्येष्ठा	चीड़	*Pinus roxburghii*
19.	मूल	साल	*Shorea robusta*
20.	पूर्वाषाढ़	अशोक	*Saraca indica*
21.	उत्तराषाढ़	कटहल	*Artocarpus heterophyllus*
22.	श्रवण	अकवन	*Calotropis procera*
23.	धनिष्ठा	शमी	*Prosopis spicigera*
24.	शतविषा	कदम्ब	*Anthocephalus sinensis*
25.	पूर्वभाद्रपद	आम	*Mangifera indica*
26.	उत्तरभाद्रपद	नीम	*Azadirachta indica*
27.	रेवती	महुआ	*Madhuca longifolia*

तालिका–२

क्रमसंख्या	राशि का नाम	वृक्ष का हिन्दी नाम	वैज्ञानिक नाम
1.	मेष	रक्तचन्दन	*Peterocarpus santalinus*
2.	वृष	छत्वन	*Alstonia scholaris*
3.	मिथुन	कटहल	*Artocarpus heterophyllus*
4.	कर्क	पलास	*Butea monosperma*
5.	सिंह	बादल	*Stereospermum chelenoides*
6.	कन्या	आम	*Mangifera indica*
7.	तुला	मौलश्री	*Mimusops elengi*
8.	वृश्चिक	खैर	*Acacia catechu*
9.	धनु	पीपल	*Ficus religiosa*
10.	मकर	कालाशीसम	*Dalbergia latifolia*
11.	कुंभ	शमी	*Prosopsis spicigera*
12.	मीन	बरगद	*Ficus bengalensis*

ऐसी अवधारणा है कि अगर कोई व्यक्ति अपने नक्षत्र से संबंधित पौधे के संवर्धन का कार्य करता है तो वह निश्चित रूप से स्वास्थ्य संवर्धन का भागी होता है क्योंकि इन पौधों से सौर उर्जा और ब्रह्मांडीय ऊर्जा निसृत होती है जिससे मानव चेतना शक्ति विकसित होती है।

अंडमान की ओंगी जनजाति तथा उनका परिवेश

विनोद मैना
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोयम्बटूर

भारत मुख्य भूमि के कोरोमण्डल तट मे करीब 1,200 कि० मी० की दूरी पर बंगाल की खाड़ी में स्थित अंडमान-निकोबार द्वीप समूह समय-समय पर विभिन्न वनस्पतिज्ञ, वैज्ञानिक, भूवेत्ता एवं मानव शास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। और उन्होंने विभिन्न शोध पत्र, पत्रिकाओं में अपने अनुभव प्रकाशित किये हैं।

कुल छोटे-बड़े 319 द्वीपों से बना यह द्वीप समूह भौगोलिक एवं जैविक-विविधता की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही मानव विज्ञान की दृष्टि से भी बहुत रोचक व महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इन द्वीपों की एकाग्र प्रकृति, आपसी दूरी, पहाड़ी व रेतीले समुद्री तट एवं हजारों सालों से मुख्य भूमि से कटाव एक अद्‌भुत एवं विरल वनस्पति को अपने भीतर संजोये रखने का मुख्य कारण है। जैविक-विविधता की दृष्टि से ये क्षेत्र जितना महत्वपूर्ण है उतना ही वनस्पतिक भौगोलिक, प्राणी–भौगोलिक एवं मानव-भौगोलिक महत्व का भी है। यहाँ के सदा-बहार घने वन इनमें बसने वाली आदिम जन-जातियों के लिये दुनिया भर में प्रसिद्ध है। देह गठन, नाक नक्श त्वचा के रंग एवं रीति-रिवाजों के आधार पर इन्हें दो समूहों निग्रेटों व मंगोलियन में बांटा गया है। अंडमान में निग्रेटो मूल के तथा निकोबार में मंगोलियन मूल के आदिवासी पाये जाते है। निग्रेटो समूह की जनजातियाँ–जरावा (दक्षिण मध्य अंदमान), सेन्टीनलीस (सेन्टोनेल द्वीप), ग्रेट अंदमानी (स्ट्रेट द्वीप) व ओंगी (लिटिल अंदमान, साउथ वे) आदि निवास करती है।

मंगोलियन मूल की जनजातियाँ है निकोबारी (समस्त निकोबार) एवं शोम्पेन (ग्रेट निकोबार)।

इन द्वीपों में पायी जाने वाली 6 आदिम जन जातियों में जरावा व सेन्टोनलीज उग्र एवं एकाकी प्रवृत्ति के तथा ओंगी एवं ग्रेट अंदमानी इनकी तुलना में काफी हद तक विनम्र एवं मिलनसार हैं। शोम्पेन अर्द्धघुमन्त प्रवृत्ति के तथा निकोबारी आधुनिक जीवन शैली से परिचित पाये जाते हैं।

पूर्व में ओंगी उग्र प्रवृत्ति के थे तथा बाहरी लोगों से मेल मिलाप पसंद नहीं करते थे। किन्तु अब धीरे धीरे ये मिलनसार व विनम्र होते जा रहे हैं। ये आज तक पाषाण युग के मानव की तरह शिकारी व जंगलों से एकत्रित कंद, मूल, फूल इत्यादि से अपना जीवन यापन करते थे। इन्होंने कृषि को अभी नहीं अपनाया। लेकिन वर्तमान में इन्हें आधुनिक जीवन शैली से परिचित कराने का प्रयास जारी है। जिसमें कुछ सफलता मिली है तथा कुछ प्रतिकूल परिणाम भी नजर आये हैं।

लिटिल अंडमान ''ओगी'' जनजाति का मुख्य निवास स्थान माना जाता है। यह पोर्ट ब्लेयर मुख्यालय से 66 नाविक मील की दूरी पर स्थित हैं। 1967 तक ओंगी ही इस क्षेत्रो के मूल निवासी है।

इनकी निरन्तर घटती जनसंख्या ने इन्हें विलुप्तप्राय बना दिया है। यह विषय एक बड़ी चुनौती व शोध का विषय बनकर उभरा है। इसीलिये इनकी जीवन शैली, खान-पान, रीतिरिवाज एवं आस-पास के परिवेश को समझना इस समस्या से निपटने के लिये एक कारगर कदम है। इसी के साथ इनके द्वारा उपयोग में आने वाली वनस्पतियों की पहचान, वैज्ञानिक विश्लेषण, संरक्षण एवं संवर्धन करना भी अति आवश्यक है।

जनगणना के अनुसार इनकी कुल जनसंख्या मात्र 99 रह गई है। इनके कुल 28 परिवार शेष है जो कि 22 सामुदायिक झोंपड़ियों में रहते है। इनमें क्बीलाई प्रथा है। एक कंबीले को बेगरा कहते हैं, जो कि मधुमक्खी के छत्तेनुमा सामुदांयिक झोपड़ी का द्योतक है। पारिस्थितिकी दृष्टि से इन्हें दो तरह से बांटा गया है, समुद्रतट पर बसने वाले एवं जंगल के भीतरी हिस्सों में बसने वाले। किन्तु 1978 में विकास कार्यक्रमों के

अंतर्गत लिटिल अंडमान में ओंगियों को दो जगहों पर स्थायी रूप से बसाया गया है, एक डुगोंग क्रीक एवं दूसरा साउथ वे पुनर्वास योजना।

आज भी ये अपनी ज्यादातर जरूरते जंगलों से ही पूरी करते है। वनों में पाये जाने वाले पेड़-पौधों, समुद्री जीव-जन्तु एवं आस-पास के परिवेश से इनका इतना तालमेंल है कि ये अपनी हर जरूरत जैसे : भोजन, दवा, रेशे, इंधन, झोपड़ी बनाने की समस्त सामग्री तथा शिकार करने के हथियार व औजारों के लिये वनों पर ही आश्रित हैं। वन व उनसे मिलने वाली सामग्री इनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में ये वनों से प्रभावित हैं।

लिटिल अंदमान के आदिवासी अपनी एक अलग पहचान, संस्कृति, रीतिरिवाज, भाषा, गीत एवं भोजन शैली रखते हैं। इनके भोजन का मुख्यांश सुअर, मधु, मछली, धोंधे एवं जंगलों से मिलने वाले विभिन्न, कंदमूल फल इत्यादि है। तीतोया, बुगेये (डायोस्कोरिया प्रजाति) की मांसल जड़ें इनके भोजन का मुख्य भाग है। आजकल ये अपनी बस्ती के आस-पास उगाये गये पौधों से मिलने वाली सामग्री नारियल, सुपारी आदि का भी उपयोग करते है। सहकारी भंडार द्वारा उपलब्ध खाद्य सामग्री भी अब इनके भोजन का एक अंग बन चुकी है। शुष्क मौसम में आज भी ये भोजन की तलाश में भटकते हैं तथा वही अस्थायी पड़ाव डाल कर रहते भी है। बारिस शुरु होने पर बस्ती में वापस लौट कर अपने-अपने कबीले के साथ सामुदायिक झोपड़ी में रहते हैं।

आदिवासी समुदायों का अपने आस-पास के परिवेश के साथ परस्पर संबंध और भागीदारी को समझने के लिये भारत सरकार के मानव एवं जीव मण्डल रिजर्व कार्यक्रम के अन्तर्गत एक परियोजना है। इसके अनुसार विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में रहने वाली विभिन्न जन जातियों का ब्यापक सर्वेक्षणों के जरिये अध्ययन कर लिया गया है। जन जातियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले पौधे और जीव जन्तुओं के संकलन एवं दस्तावेज तैयार कर लिये गये है। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह भी उनमें से एक क्षेत्र है।

अब तक किये गये जनजातिय क्षेत्रों के सर्वेक्षण से पता चला है कि वनों में ऐसे पेड़ -पौधे जिनका दोहन व्यवसायिक जौर पर किया जा सकता है, प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। आदिवासियों के द्वारा अपनी विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिये प्रयोग में लाई जाने वाली 7000 से भी अधिक पादप प्रजातियां अब तक रिकार्ड की गई है। खाड़ी द्वीपों में पाई जाने वाली ओंगी, ग्रेट अंडमानी, निकोबारी एवं शोम्पेन आदि जन-जातियों का नृवनस्पतिक सर्वेक्षण हो चुका है। और अध्ययन द्वारा संकलित सामग्री, सूचना एवं प्रकाशित शोध पत्रों के आधार पर ओंगी जनजाति के नृवनस्पतिक अध्ययन पर एक रिपोर्ट भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण अंडमान-निकोबार परिमंडल, पोर्टब्लेयर द्वारा सम्मिलित की जा चुकी है तथा अध्ययन अभी भी जारी है।

ओंगी जनजाति के नृवनस्पतिक सर्वेक्षण के दौराण एकत्रित 100 पौधों में से लगभग सभी पौधों व उनकी सामग्री की पहचान हो चुकी है। इनके द्वारा विभिन्न प्रयोजनों में प्रयोग की जाने वाली वनस्पतियां निम्न है। औषधीय उपयोग में 10 पादप प्रजातियां, खाद्य पदार्थों (पूरक भोजन सब्जियां) के रूप में 20 प्रजातियां, झोपड़ी निर्माण में 11 इंधन के लिए 4 एवं 31 प्रजातियां अन्य दैनिक जरूरतों को पूरा करती हैं।

उदाहरण के तौर पर पेन्डनस प्रजाति (केवड़ा, टोरेवु), डायस्कोरिया ग्लेब्रा (ईथोलावु), मैनिलकारा लिट्टोरेलिस (टांगेवाका, महुवा), सेमीकार्पस कुर्जो (जुगने, जंगली काजू), अमोमम इकुलियेटम (कुवुम्बाबे, जंगली अदरक) इत्यादि पौधों से प्राप्त खाद्य पदार्थो को वे बड़ी रूचि से खाते हैं।

ड्रेसिना अंगुस्टीफोलिया (जिबक), ड्राप्टेरिस प्रजाति (टोरमेल), यूपेटोरियम आंडोरेटम (टुकुकाहा), मेलोटस (ओवोट्टाके), पोगेमिआ पिन्नेटा (ओइचुकाबे), स्कीवोला सेरिसी (कवाई) आदि पौधों को ओंगी अपने विभिन्न रोगों के उपचार हेतु उपयोग में लाते हैं। विभिन्न पौंधों के भाग व प्रयोग के तरीके भी भिन्न है। आमतौर पर पेट दर्द, जख्म, मोच, माहवारी का दर्द, सरदर्द, जोंड़ों का दर्द और सांप के काटने पर प्रयोग किये जाते हैं।

अटोंकार्पस प्रजाति (बुलीटांगु), मेकरंगा प्रजाति, नीमा अंडमानिका (जंगली जायफल) व कैज्युराइना

इक्यूसिटीफोलिया की लकड़ी इंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। ओंगी समुदाय की सामुदायिक झोपड़ी (बेयरा) जिसमें ये वर्षा काल में रहते हैं काफी बड़ी मधुमक्खी के छत्तेनुमा होती है। इसकी विषेशता है कि इसकी छत समुद्र तटों पर पाये जाने वाले अनावृत बीजी (जिम्नोस्पर्म) साइकस रम्फी या पैन्डनस (केवड़े) की पत्तियों की बनी होती है। इसके अलावा अन्य उपयोग में आने वाले पौधे निम्न है जैसे : कैलमस पालुस्टरिस (बेंत, कोजू) केलमस विमिनेलिस (तोमेये), ग्रोविया ग्लेब्रा (जोलेबे) कोरथेल्सिया प्रजाति (पेवेगां), मोरिन्डा सिट्रिफोलिया (तुल्ये) एवं केरेपा मोलुक्केन्सिस (थांग-टू)।

क्राइनम एशियेटिकम, लिआ इंडिका, मैकैरंगा टैनैरिओस आदि की बड़ी पत्तियों को बिछोने के रूप में उपयोग करते हैं।

ऐरेका ट्रार्डएन्ड्रा (जंगली सुपारी), पाइपर प्रजाति (जंगली पान पत्ती) को चबाने तथा ग्लाईकासमिस पेन्टाफाइला की पत्तियों को ये शराब के नशे तुल्य उपयोग करते हैं। हिबिस्कस टिलिएसिमस, डेरिस ट्राइफोलियटा, फाइक्स जिब्बोसा फाइक्स हिप्सिडा से प्राप्त रेंशों को नाव बांधनेकी रस्सी, मोटा बुनाई तथा ढकने में प्रयोग करते हैं।

सौन्दर्य प्रसाधन एवं साज सज्जा के शौक से ये वनवासी भी अछुते नहीं रहें। इसके लिये भी इन्होंने जंगली वनस्पतियों के फल, बीज एवं छाल आदि को ही आभूषणों हेतु चुना। कैलोफाइलम आइनोफाइलम (थैब्बे), क्लोरोडेन्ड्रम पेनीकुलेटम (कुबुटिटला), इरिथ्रिना वेरिगेटा (लेवा-वाकुवाटीरा), आइपोमिआ पेस-कापरे (तिन्गुले) एवं एक्सोरा बारबेटा (इबु-बुमे) इत्यादि के पुष्प व फलों से ये अपनी रूप सज्जा करते है।

शिकार के हथियार, नाव व अन्य उपयोगी औजार भी ये पेड़ पौधों से बनाते है। जैसे : कैरापा मोलुक्केन्सिस की लकड़ी धनुष बनाने में और रेडिया करकेटा के तने से तीरों का निर्माण करते है। यौनिमस कोचिआइनेन्सिस की छाल से प्राप्त रेशों से ये धनुष की प्रत्यंचा बनाते हैं। मोरिंडा सिट्रीफोलिया की लकड़ी चाकू व कुल्हाड़ी के हत्थे बनाने में उपयोग करते हैं। हेरोलिया कुपेनिओइडिस के तने से मछली पकड़ने की टोकरी बनाते है। तथा केलमस प्रजाति से बनी टोकरियों को सामान रखने हेतु उपयोग करते हैं।

नाव इनके जीवन का एक अभिन्न अंग है। यातायात या मछली पकड़ने के लिये नाव का उपयोग अति आवश्यक है। ओंगी स्टरकुलिया प्रजाति के पेड़ के पूरे तने से बिना जोड़ की उत्तम नाव बनाते हैं।

इस गहन अध्ययन के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते कि ओंगी जनजाति का जीवन पूर्णतया वनस्पतियों तथा अपने आस पास के परिवेश से संतुलित रूप से जुड़ा हुआ है। ये अपनी जरूरत की वस्तुओं के लिये इन द्वीपों के अछूते वनों कर निर्भर है। नृ-वनस्पतिक अध्ययन से इनके उपयोग में आने वाले पेड़-पौधों का पता चला है जिससे कि इन वनस्पतियों के संरक्षण के साथ ही इनके निवास स्थान का भी संरक्षण किया जा सके। इसी जानकारी के आधार पर हमें इनकी निरंतर घटती जनसंख्या के कारणों का पता चलेगा, जिससे इनके परिवेश, वनस्पतियों एवं इस अमूल्य मानव पितृहव्य का भी संरक्षण संभव हो सकेगा।

———————

कुछ रोचक तथ्य : क्या आप जानते है?

हर्ष चौधरी
केंद्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

* सम्पूर्ण पृथ्वी का क्षेत्रफल 510100500 वर्ग कि० मी० है।

* पृथ्वी के जलभाग का क्षेत्रफल 361150000 वर्ग कि० मी० है (लगभग 70.76%)।

* पृथ्वी पर सर्वोच्च ऊँचाई ''माउण्ट एवरेस्ट 8848 मी० की है।

* सर्वाधिक गहराई फिलीपीन्स के निकट चैलेंजर द्वीपके पास ''मेरियाना गर्त'' की 11,033 मी० है।

* धरातल का सबसे नीचा स्थान ''मृतसागर'' (dead sea) 396 मी० नीचे है।

* विश्व का सबसे ऊँचा पठार ''तिब्बत का पठार'' है जो 5800 मी० ऊँचा है।

* ''सुपीरियर झील'' विश्व की सबसे बड़ी मीठे पानी की झील है। अमेरिका और कनाडा स्थित इस झील का क्षेत्रफल 82,100 वर्ग कि० मी० है।

* लगमग 15 मिलियन वर्ष पूर्व एक गर्म, सघन बिन्दु विस्फोटित हुआ जिसे ''बिग बैंग'' (Big bang) कहा गया। इसी के साथ वस्तु (पदार्थ) और स्थान की उत्पत्ति हुई। बेल्जियम के वैज्ञानिक जार्ज एब लेमित्रे (George Eb Lemitre) ने 1966 में ''बिग बैंग सिद्धांत'' (Bigbang theory) को प्रस्तुत किया।

* ''आंटार्कटिका'' के उपर पहला तथा ''फाकलैंड'' के ऊपरी वायुमंडल में ओजोन परत का दूसरा छिद्र स्थित है।

* विश्व का सबेस बड़ा नेशनल पार्क ''मसाईमारा'' (केन्या) अफ्रीका में स्थित है।

* गोल्डन राइस-२ रेशेल ड्रेक (Rachel Drake) और उनके साथी द्वारा विकसित अनुवांशिकी रूप से परिष्कृत चावल की यह किस्म बच्चों में अंधता (Blindness) और विटामिन A की कमी से होने वाली मृत्यु को रोक सकेगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार प्रतिवर्ष दक्षिण-पूर्वी एशिया में विटामिन A की कमी के कारण 5,00,000 बच्चे अन्धता से ग्रसित और लगभग 6000 काल कवलित हो जाते है।

* गत 26 दिसम्वर, 2004 को प्रातः 6.30 बजे आये भूकंम्प से उत्पन्न सुनामी लहरो के कारण 3 लाख लोग मारे गये व लगभग 20 लाख से ज्यादा बेधर हुये। इस भूकंम्प, जिसका परिणाम रिक्टर पैमाने पर 9.3 मापा गया था, से 20×10^{17} जूल्स (Joules) या ट्रिनीट्राटलीन विस्फोटक की 475 मेगाटन या हिरोशिमा पर गिराये गये 23000 एटम बमों के बराबर उर्जा विमुक्त हुई।

* 'जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ' में छपी रिपोर्ट के अनुसार कीटनाशकों के बढ़ते प्रयोग, औद्योगिक विकास, घरेलू कचरे के भंडार और अन्य प्रदूषण कारी तत्वों से पश्चिमी देशों में अल्झीमर्स, पारकिंसस और अन्य मानसिक रोगों से पीड़ित रोगियों की संख्या में तीन गुणा वृद्धि हुई है।

* पृथ्वी के तापमान में हो रही निरंतर वृद्धि से ''गोमुख ग्लेशियर'' (गढ़वाल हिमालय–गंगा का उद्गम स्थल) मात्र 2 वर्षो में 1.5 कि०मी० पिघल चुका है। समुद्र तल से 12770 फीट की ऊँचाई पर स्थित यह ग्लेशियर सन् 2002 में 32 कि० मी० लम्बा व 4 कि० मी० चौड़ा था जो अब मात्र 27 कि० मी० लम्बा और 2.5 कि० मी० चौड़ा रह गया है। यदि गोमुख ग्लेशियर इसी गति से पिघलता रहा तो गंगा नदी का अस्तित्व संकट में पड़ सकता है।

* लोकप्रिय कार्टून चरित्र 'पाँकेमोन' वैसे तो अपने अच्छे कारनामों के लिये जाना जाता है किन्तु वैज्ञानिकों ने एक ऐसी जीन का पता चलाया है जो कैसर उत्पन्न करने में मुख्यरूप से जिम्मेदार है। इस आँनकोजीन का नाम भी 'पाँकेमोन' है जिसका पूरा नाम 'पाँकेराइथ्रायड मीलॉयड आँनटोजेनिक फैक्टर है। हालाँकि अबतक दर्जनों आँकोजीनो का पता लगाया जा चुका है किन्तु पाँकेमोन इन सब से भिन्न है क्योंकि यह अन्य जीनों को नियंत्रित करता है। कैंसर पैदा करने वाली जीन तभी काम कर सकता है जब पाँकेमोन उन्हे इसकी अनुमति देता है। यदि किसी प्रकार पाँकेमोन जीन की सक्रियता को रोक दिया जाय तो अन्य जीन स्वतःनिष्क्रिय हो जायेंगी। शोधकर्ता अब ऐसी दवाओं के निर्माण में लगें है जिससे पाँकेमोन जीन पर नियंत्रण किया जा सके अर्थात कैंसर को रोका जा सके।

* ''एल-नीनों'' जलधारा गर्म जलधारा है जो भारतीय मानसून को सर्वाधिक प्रभावित करती है।

* ''ला-निनो'' जलधारा जिस वर्ष एल-नीनो जलधारा प्रवाहित नही होती उस वर्ष प्रवाहित होती है।

* कुछ अनुमानों के अनुसार देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने के लिये हमारी धान की पैदावार सन् 2025 तक दुगनी हो जानी चाहिए।

* प्रोटिन से भरपूर आलू की किस्म सफलता पूर्वक तैयार करने के बाद अब नेशनल सेंटर फॅार प्लॉट जीनमे रिसर्च (NCPGR) नई दिल्ली के वैज्ञानिको ने टमाटर की ऐसी किस्म तैयार की है जो आक्जेलिक एसिडसे मुक्त है। जिसे खाये जाने वाले कुकुरमुत्तो से प्राप्त जीन को समान्य टमाटर में स्थानांतरित करके प्राप्त किया गया है। टमाटर में विद्यमान आक्जेलिक एसिड गुर्दों में पथरी बनने (Kidney stone) का कारण है।

* वैज्ञानिकों ने जेनेटिकली अभियंत्रित (genetically engineered) ऐसे पौधों का विकास किया है जो कि ऐसे स्वास्थ्य बढ़ाने वाले पदार्थो को अपने आप्में पैदा करने में सक्षम है जो मछली में पाये जाते है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों के अनुसार यह नई पीढ़ी की ऐसी खाद्य फसलें विकसित करने में सहायक होगा जो ह्रदय की व अन्य बीमारियों के खतरे को कम कर सके गी। ब्रिस्टल विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने ''अरेबिडोप्सिस'' (Arabidopsis) नामक एक पौधे में 3 फैटी एसिडस् (Fatty acids) जींन्स, जिनमें से दो जीन शैवाल (algae) से और एक कवक (fungi) से स्तानान्तरित की है। जैसे जैसे पौधों की बढ़वार हुई, इन जीनों ने भी ओमेगा-3 और ओमेगा-6 फैटी एसिडस को बनाना आरंभ कर दिया जो शरीर के स्वस्थ्य रहने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये फैटी एसिडस् ह्रदय समंम्बंधित बीमारियों, रिह्यूमेटोआयड गठिया (Rheumatoid arthritis), मधुमेह (diabetes) में अत्यंत प्रभावी हैं।

* आज से लगभग 7 वर्ष पूर्व जापान द्वारा शुरू किये गये ''इंटरनेशनल राईस जीनोम सीक्वेंसिंग' कार्यक्रम में भारत के अतिरिक्त नौ अन्य देशों–जापान, अमेरिका, फ्रॉंस, चीन, ताईवान, दक्षिणी कोरिया, थाईलैंड, ब्रजील और यू० के० के लगभग 250 वैज्ञानिकों ने भाग लिया। लगभग 200 मिलियन डॉलर की इस परियोजना का उद्देश्य धान के ''जेनेटिक मैप''का पता लगाना था। इन वैज्ञानिकों ने धान की जीनों के 370 मिलियन बेस पेयर्स उनकी स्थिति का ब्लूप्रिंट सफलतापूर्वक तैयार कर लिया है। खाद्य फसलों में धान एक मात्र ऐसा पौधा है जिसका सम्पूर्ण जेनेटिक ब्लूप्रिंट खोज लिया गया है। अंतर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान, मनीला (फिलीपाइन्स) के डा० खुश (former chief breeder) के अनुसार यह सफलता मानव के चंद्रमा पर उतरने से कम नहीं है। इस सफलता से धान की अधिक विकसित, उच्च पैदावार वाली किस्मों को तैय्यार करना काफी आसान हो जायेगा।

* ''एम-एस० स्वामीनाथन रिसर्च फाऊंडेशन'' के वैज्ञानिको ने कुछ मेनेग्रोव वनस्पतियों से प्राप्त जीन को

स्थानीय धान की किस्मों में स्तानांतरित कर धान की एक ऐसी किस्म बनाई है जो समुद्र के पानी में उगाई जा सकती है। ''यूनाईटेड नेशंन्स इंटर गवर्नमेंटल पेनेल ऑन क्लाईमेट चेंज'' द्वारा दी गई रिपोर्ट के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के फलस्वरूप समुद्र में पानी का स्तर उपर ऊठेगा जिससे तमाम निचले तटवर्त्ती ईलाके जलमग्न हो जायेगे। स्वामीनाथन रिसर्च फाऊंडेशन द्वारा खारे पानी में पैदा की जाने वाली फसलों के विकास कार्यक्रम में यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

* वैज्ञानिकों ने एक ऐसी विचित्र जीवित वस्तु की पहचान की है अब नही देखी गई है। इसके जेनेटिक विश्लेषण (genetical analysis) से यह पता चलता है कि यह अब तक की खोजी गई सभी जीवित वस्तुओं से सर्वथा भिन्न है और इसे इसकी हीं अपनी एक अलग श्रेणी में रखना होगा। वायरस जैसे लगने वाली इस आर्गेनिज्म का नाम ''मिमीवायरस'' या ''मिमिकिंग माईक्रोब'' (Mimivirus or Mimiking Microbe) रखा गया है क्योंकि इसे सर्वप्रथम एक बैक्टीरियम समझा गया जो एक अमीबा (amoebae) में पाया गया था। यह अभी तक ज्ञात किसी भी वायरस से माप में दो गूने से बड़ा है। इसकी दूसरी रवासियत यह है कि इसमें डी. एन. ए. रिपेयरिंग एनजाईमस् (DNA repairing enzymes) व अन्य प्रोटिन पाई गई है जो कोशिका वाले प्राणियों (Cellular organisms) का मुख्य गुण है। वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है, कि 'मिमीवायरस'–न्यूक्लिओ साईटोप्लाज्मिक (Nucleocytoplasmic) बड़े डी. एन. ए. वायरस के एक ऐसे नये कुल का प्रतिनिधित्व करता है जो पृथ्वी पर प्रथम जीवन के ही साथ अवतरित हुआ था और जीवन के नये चौथे रूप (Fourth domain) का संकेत देता है। जीवन के 3 ज्ञात रूप है–यूकैरिओट्स (eukatyotes) प्रोकैरिओटस (prokanyotes) तथा आरकिया (archaea)।

* ''ग्रीन काऊ'' ऐसी गायों को कहते हैं जिनकी जुगाली से मिथेन गैस का स्राव नही होता है। गायों की जुगाली से निकलने वाली मिथेन गैस पर्यावरण को प्रभावित करती है। जुगाली से निकलने वाली इस मिथेन को समाप्त करने के लियें वैज्ञानिक प्रयासरत हैं।

* अत्यधिक प्रदूषण के कारण वायुमंडल के उपरी भागमें एक सघन परत का निर्माण हो गया है जिसके फल स्वरूप सूर्य का सम्पूर्ण प्रकाश पृथ्वी पर नहीं पहुँच पा रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार प्रतिवर्ष सूर्य द्वारा पृथ्वी पर आने वाले प्रकाश में निरंतर बढ़ती कमी के कारण पृथ्वी की जलवायु में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। सूर्य के प्रकाश की इस कमी को ''वैश्विक प्रकाश मंदी'' कहा जाता है।

* ऐसा अनुमान किया जाता है कि आज से 25 करोड़ वर्ष पहले सभी महाद्वीप आपस में जुड़े थे। उस समय दुनिया में एक ही समुद्र और एक ही महाद्वीप था। वैज्ञानिकों ने इस महाद्वीप को ''पैनजीया'' (अखंड धरती) नाम दिया है। बाद में यह महाद्वीप दो भागों में बँट गया–उत्तरी जिसे 'कोरेशिया' और दक्षिणी को ''गोंडवाना लैंड'' कहा गया। दक्षिण भारत की भूमि भी गोंडवाना लैंड का हिस्सा थी जो आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, द० अमेरिका और अंटार्कटिका से जुड़ी थी।

———————

प्रकृति के अमूल्य पाँच वृक्ष

नन्दलाल तिवारी
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

भारतीय संस्कृति में पेड़ पौधों का बहुत महत्व है। असंख्य वृक्ष विभिन्न रूपों में मानव के लिए किसी न किसी रूप में उपयोगी हैं। कुछ वृक्ष विशेष महत्व के कारण पूजित होते हैं; जैसे-बरगद पीपल, आम, बेल और आँवला।

बरगद–मोरेसी कुल के इस सदस्य का वैज्ञानिक नाम फाइक्स बेंगालेसिस हैं। देशके विभिन्न भागों में इसे वट बर, बरगद, अक्षय आदि नामों से जानते है। 25 मीटर तक ऊँचे इस महावृक्ष में बहुत छोटे-छोटे फल लगते हैं। इसकी शाखाओं से लाल लाल अंकुर निकलते हैं। वह इतनी बढ़ जाती है कि लटकती-लटकती पृथ्वी में आकर जम जाती है वहाँ-वँहा बड़ का वृक्ष हो जाता है। इसलिए इसकी अनेक जडे होती है परन्तु वास्तव में यह एक ही वृक्ष की आरोही जड़े होती है तथा परस्पर आपस में मिली होती है। यह वृक्ष भारत के सभी स्थानों में पाया जाता हैं। वृक्ष की महिलायें विशेष रूप से पूजा करती है। इस वृक्ष के प्रत्येक भाग में औषधीय गुण पाये जाते है जैसे, इस वृक्ष का छाल मल रोधक, पतले दस्त, मधुमेह, तथा कफ एवं पित्त नाशक के काम आता है। इसका दूध अपच, दाँत दर्द तथा जोड़ो के दर्द के लिए लाभप्रद है। इसके फल शक्तिवर्धक और चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस वृक्ष को चौपालों एवं सड़को के किनारे लगाकर शीतल छाया प्राप्त होती है तथा पर्यावरण को संतुलित रखने में सहायक होता है।

२) **पीपल :** यह वृक्ष भी मोरेसी (Moraceae) कुल का सदस्य है। इसका वनस्पतिक नाम (*Ficus-religiosa*) हैं। इसे हिन्दी में पीपल बंगला तथा संस्कृत में अश्वत्थ कहते है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यह वृक्ष भारत के प्रायः सभी गाँवों एवं शहरो में पाया जाता है। परन्तु वनों में कम पायें जाते है। इस वृक्ष की ऊँचाई 10 से 25 मीटर तक होती है। इसके पत्ते गोल और अनिदार डालियों पर लगते है। यह पत्ते सदैव हिलते रहते हैं। इस वृक्ष के भी अंकुर (अरोही जड़े) निकलती है। इस वृक्ष का फल छोटा तथा पकने पर लाल रंग का होता है। इसके फल को पशु पक्षी, बड़े चाव से खाते है साथ ही बच्चे भी खाते है। इस वृक्ष को हमारी संस्कृति में पवित्र माना गया है। कहा गया है की इसके जड़ो में ब्रह्मा, छालो में विष्णु, शाखाओं में शिव शंकर तथा पत्तों में सभी देवताओं का वास होता है। इसे संस्कृत श्लोक में इस प्रकार कहा गया है।

मूले ब्रह्मात्वचा विष्णु, शाखा शंकरमेवच।
पाते पाते देवानाम्, वृक्षराजा नमोस्तुते।।

साथ ही इस पर शनि देव के बास होने का जिक्र है। इस लिए हर शनिवार को महिलायें एवं पुरुष इसकी पूजा शनि को शांत करने के लिए करते है। पीपल को पुरुष (देव) तथा नीम को स्त्री (देवी) का स्थान प्राप्त है। इस वृक्ष के प्रत्येक भाग में औषधीय गुण पाये जाते है। इसके पके फल को खाने से शीतल, हृदय को हितकारी तथा रक्त रोग, पित्त और अरूचि और अपच तथा यादाश्त (स्मृति) ठीक रहती है। इसके पत्ते को काली मिर्च के साथ पीसकर दाँत मे लगाने से दर्द ठीक होता है। इसके टूसे कोमल होते है उसे गर्म करके फोड़े पर लगने से फोड़ा फट कर सूख जाता है।

आम – यह वृक्ष एनाकारडियेसी (Anacardiaceae) कुल का है। इसका वनस्पतीक नाम (*Mangifera Indica* L.) है। इसे हिन्दी व बंगला में आम कहते है। इसका वृक्ष २० मीटर तक ऊँचा होता है। यह वृक्ष भारत के सभी गाँवों एवं जंगलों में पाये जाते है। आम की अनेक जातियाँ है। परन्तु आकृति एक जैसे होती है। इसके पत्ते लम्बे होते है। इसके फूल को बऊर या मोंजर कहा जाता है। इसका फल बड़ा एवं हरा होता है तथा पकने

पर पीला हो जाता है। इसका फल बहुत मधुर स्वादिष्ट होने के कारण फलो का राजा कहा गया है। इसके पत्ते को पूजा के कार्य मे लिया जाता है। इसके कच्चे फलो को लोग तरह-तरह के आँचार बनाने के काम में लाते है। इसके पके फलों से अमावट बनता है। इस वृक्ष को गाँवो एवं शहरों के लोग फलों के लिए अपने खाली जगहो में प्रेम से लगाते है। इस वृक्ष का भी अपना औषधीय गुण है। जैसे इस वृक्ष का मौर शीतल बाद कारक, मलरोधक और अतीसार निवारक है। इसके कच्चे फल बाद और पित्त कारक है इसके साथ ही गर्मी के दिनों मे लू लगने पर इसके कच्चे फल को पकाकर नमक के साथ खाने से लू का असर कम हो जाता है।

इसके पके फल पेट के लिए लाभप्रद है। अधिक कच्चे फल के सेवन से नेत्र रोग को उत्पन्न करता है। यह यद्यपि पके आम मे विटामिन 'ए' की बहुलता के कारण नेत्रो के लिए अधिक लाभप्रद है। परन्तु अधिक पके आम खाने के बाद सोठ का जल अथवा जीरा एवं काला नमक खाना उचित है।

बेल : यह रूटेसी (Rutaceae) कुल का सदस्य है। इसका वैज्ञानिक नाम (Aegle marmelos) है। इसे हिन्दी व बंगला मे बेल तथा संस्कृत मे विल्व कहते है। यह वृक्ष साधारण ऊँचाई का होता है। यह वृक्ष भारत के सभी जगहो पर पाया जाता है। इसकी शाखाओं में काँटे होते है। पत्ते त्रिशुलाकार होते है। इनका फूल सफेद और सुगंधित होता हैं। इसका फ्ल गोल स्वादिष्ट और कड़े छिल्के से ढका होता है। इसके फल में बहुत से बीज होते हैं। इन बीजों में गोद होता हैं। ग्रीष्म ऋतु में इसके पुराने पत्ते गिर जाते है तथा नये पत्ते आते है। इस वृक्ष की लकड़ी बहुत ही पवित्र चंदन के समान मानी जाती है। जैसे कि इसके पत्तियो की माला बनाकर देवी, देवताओं पर चढ़ाया जाता है। इसके साथ ही इस वृक्ष का औषधि गुण है। जैसे इस वृक्ष की जड़ दसमूला के काढ़ा बनाने में उपयोग की जाती है। इसके पत्ते को पीसकर आँख मे लगाने से नेत्र रोग में आराम होता है। जल में पकाकर पीने से ज्वर ठिक होता है। पत्तो का रस बच्चों के लिए दस्त और कफ को खत्म करता है। बेल के फूल से अतीसार ठीक हो जाता हैं। फलों का उपयोग पेट की सभी बिमारीयों के लिए किया जाता है।

आँवला :– यह (Euphorbiaceae) कुल का है। इसका वैज्ञानिक नाम (*Phyllanthus*) है। इसे हिन्दी में आँवला बंगला में आम्ला एवं संस्कृत में आदिफल, धातृ और आमलकी के नाम से जाना जाता हैं। यह वृक्ष बड़ा एवं मध्यम ऊँचाई का होता है। इसके पत्ते छोटे-छोटे इमली के पत्ते की तरह होता है। इसकी शाखाओं में छोंटे-छोंटे पीले-पीले फूल होते है। फल गोल धारी दार होता है। इसमे ६ हल्की धारिया होती इस वृक्ष को फलों के लिए लगाया जाता है। इस वृक्ष की भी पूजा होती है। शास्त्र में इस वृक्ष के लिए कहा गया है कि पूरे कार्तिक महीने में इसपर भगवान विष्णु का बास होता है। फलस्वरूप इस वृक्ष की पूजा विशेष कर माहिलाये कार्तिक माह में जल अक्षत (चावल) चढ़ाकर अपने सुख वैभव प्राप्ति हेतु प्रार्थना करती है। इस वृक्ष का भी अपना औषधीय गुण है। इसके फल से गैस, पित्त, कफ, खाँसी को खत्म करता है। तथा शक्ति प्रदान करता है क्योकि इसमें सर्वधिक विटामिन सी मिलता है। इसके फलो से च्यवन प्राश बनता है जो सर्दी, खाँसी प्रतिरोधक, व निवारक है और पेट रोंगों से मुक्त करता है।

————————

''पर्यावरण समाचार''

संजीव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. सिक्किम के एक पौधे से बनती है कैंसर की दवा। यहाँ के जंगलों में टैक्सस बकाटा नामक एक पौधे के पत्तो से कैंसर की दवा बन सकती हैं। इस पौधे से बाझपन तथा पारकिसन (कंपन रोग) की दवा भी बन सकती है। इस पौधें की पत्तियाँ अंतर्राष्ट्रीय बाजार में काफी ऊँचे दाम मे बिकती हैं।

–(दैनिक जागरण)

2. कोलकाता नगर निगम नये धापा में एक पक्षीगृह निर्माण के विषय पर सोच रही हैं। इस प्रस्तावित पक्षीगृह में वनविभाग, नगर निगम, पक्षी विशेषज्ञ और रख-रखाव के विशेषज्ञ रहेंगे। इंगलैण्ड, आस्ट्रेलिया, अमेरिका और सिंगापुर के घरेलू संस्थाओं ने इस पक्षीगृह निर्माण में दिलचस्पी दिखाई है। इस पक्षीगृह में केवल उन पक्षियों को रखा जाएगा जो अपने आपको भारतीय वातावरण के अनुकुल ढाल सके।

–(दैनिक जागरण)

3. भारत के नगरीय तथा उपनगरीय अंचलों से रोजाना हजारों टन निकलने वाले कूड़े-कचरे से यदि प्रारम्भिक स्तर पर प्लास्टिक कचरे अलग अलग कर दिये जाएँ तो जैविक किस्म के कूड़ों के प्रसंस्करण के लिए छोटी-छोटी इकाइयां बनाई जा सकती है, जिसमें भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़गी व रोजगार भी मिलेगा।

–(सन्मार्ग समाचार पत्रिका)

4. अमेरिका और मैक्सिकों के रेगिस्तानी एवं पथरीली जगहों में पाई जाने वाली भीमकाय छिपकली ने मधुमेह के इलाज का मार्ग प्रशस्त किया है। इस छिपकली के विष एवं लार के उपयोग से मधुमेह रोगियों को इंसुलिन से निजात मिल सकती है, इसके लार बनाने वाली ग्रंथियों से एक विशेष प्रकार की विष बनती है। इस विष के अध्ययन से पता चला है कि इसमें एक पदार्थ मानव शरीर में पाई जाने वाले हारमोन से बहुत मिलता जुलता है। यह विष भोजन को आंतोंमे लाने के बाद अग्नाशय को सक्रिय कर देता है जो इंसूलिन बनाने को सहायक है।

5. महाराष्ट्र के सगरौली नामक स्थान में गर्दभ आश्रयस्थली में लावारिस और लाचार गधों को सुरक्षित पनाहस्थल मिल गया है, 16 एकड़ में फैली इस आश्रयस्थली में तकरीबन 15 गधो के लिए पक्का ठिकाना है उनके लिए तीन टयूबवैल, भरपूर हरीघास व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध है।

–(इंडिया टूडे)

6. प. बंगाल के हुगली जिले के आरामबाग नामक स्थान के एक वनस्पतिज्ञ ने एक ऐसा सूक्ष्मदर्शी तैयार किया है जो आम सूक्ष्मदर्शी से सूक्ष्म वस्तुओं को 10,000 गुणा बड़ा दिखाएगा। एक साधारण सूक्ष्मदर्शी मूलवस्तु को उससे 1500 गुण बड़ा दिखाता है। यह सूक्ष्मदर्शी बाजार में आ जाने से अन्य इच्छुक लोगों के साथ साथ वनस्पतिज्ञों को भी लाभ पहुँचाएगा।

–(वर्तमान बंगला समाचार पत्रिका)

7. इसमें कोई शक नहीं कि 26 दिसम्वर 04 को आए सुनामी से उष्ण कटिबंधीय मैंग्रोव वनस्पति ने एशिया के अनेक भागों में सैकड़ो लोगों को बचाया है। इसलिए कई देशों की सरकारो ने मैंग्रोव के रोपन और संरक्षण पर जोर देना आरम्भ कर दिया है। लेकिन विश्व खाद्य और कृषि संगठन (एफ. ए. ओं) ने बड़े पैमाने पर मैंग्रोव वनस्पति नही लगाने को कहा है। उसके अनुसार इससे मानव व पर्यावरण को लाभ की अपेक्षा नुकसान पहुँच सकता है। छोटे कद के मैंग्रोव समुद्री तूफान या सुनामी को झेल नहीं पाएगे। एफ. ए. ओं के प्रवक्ता ने कहा है कि कोई भी वनस्पति इस प्रकार लगाए जाएं कि यह वहाँ के पारिस्थितिक तन्त्र को न विगाड़ दे अर्थात् किसी वनस्पति की एवज में मैंग्रोव वनस्पति न लगाए। एफ. ए. ओ. ने इस बात की मंजूरी नहीं दी है कि आप मूल्यवान परिवर्तन जैसे कछुओं को शरण देने वाले वनस्पति (Turtle Nesting Ground) व समुद्री घास के इलाके (Sea Grass Beds) के एवज के मैंग्रोव वनस्पति लगा दें।

–(टेलिग्राफ समाचार पत्रिका)

8. सरिस्का अभयारण्य व बाघ परियोजनाओं में पिछले पाँच सालों के दौरान 352 बाघ चोरी छिपे मारे जा चुके है। हालात इतने बदतर है कि इस समय सरिस्का अभयाारण्यों में एक भी बाघ नहीं है। 1999 से 2003 तक 352 बाघ मारे जा चुके है। इसके अलावा अनगिनत बाघों के रवाल व हड़िडया मिली है सो अलग। इस प्रकार अब तक 411 बाघ मारे जा चुके है।

–(वर्तमान बंगला समाचार पत्रिका)

9. प. बंगाल के दक्षिणी हिस्सों में हाथियों ने कोहराम मंचा रखा है। ये हाथी दलमा पहाड़ों से निकलकर मेदिनीपुर व बांकुड़ा के फसल वाले इलाकों में पहुँच जाते हैं और फसल नष्ट कर देते है गांवो में घुसकर लोगों को भी जान से मार देते है। इससे इलाके के गरीब किसानों को बहुत नुकसान उठाना पड़ रहा है।

–(वर्तमान बंगला समाचार पत्रिका)

10. उत्तर बंगाल के शिलिगुड़ी नामक शहर में ''ग्रीन अस्पताल'' का निर्माण हुआ है। इस अस्पताल में चाय की पत्तियां, सब्जियाँ, फूल व फल के विषयों में विस्तृत जानकारी दी जाएगी। इस अस्पताल में किसान लोग मृदा सर्वेक्षण, बीज की नस्ल, खाद्य की गुणवता इत्यादि के बारें में जान सकेंगे।

–(बर्तमान बंगला समाचार पत्रिका)

————————

वसुन्धरा का भौगोलिक दर्पण

भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्टब्लेयर

सौर मंडल के ग्रह-तारों में, जहां प्रकृति का पूर्ण समर्पण है।
उस नील गगन के प्रांगण में धरती का अनोखा दर्पण है।।
सात महाद्वीपों में प्रकृति ने, वसुधा का किया बंटवारा है।
सागर नदियां, झीलों, झरनों से, जिनका परिवेश संवारा है।।
जहां विविध वनस्पति, जीव-जन्तु, अनमोल प्रकृति-आकर्षण है।
उस नील गगन के प्रांगण में,.....है।।

जब एक वर्ष पूरा करती है, वह धरती, रवि की परिभ्रमण क्रिया।
तब मौसम, ऋतुएं, दिन-रात बने, और सूर्य-चन्द्र में ग्रहण क्रिया।।
इस भ्रमण प्रक्रिया में साधक, जहां में गुरुत्वाकर्षण है।
उस नील गगन के प्रांगण में.....है।।

पर्वत पठार, मैदान, घाटियाँ, क्यों हरदम सवाल बनते ही रहे।
अनुकूल प्रकृति के अंचल में, क्यों प्रतिकूल जाल बुनते ही रहे।।
जहां हर युग में, हर महाद्वीप पर, मानव का हुआ पदार्पण है।
उस नील गगन के प्रांगण में, ...है।।

जल मंडल का भाग, स्थल के भाग से, सब कहते, बड़ा है, तीन गुना।
वायुमंडल भी है अति विशाल, जो इस के चहुँ ओर बना।।
गतिशील है पर्यावरण जहां पर, वहां जल-ओस-बर्फ का वर्णन है।
उस नील गगन के प्रांगण में, ...है।।

कुछ बर्फीले महाद्वीप भी है, जहां वनस्पति जाति का नाम नहीं।
वहाँ कुछ ही जीवन रहता है, पर चलता प्रगति का काम नहीं।।
कहीं अजब प्रकृति का गजब तमाशा, कहीं तूफानों का घर्षण है।
उस नील गगन के प्रांगण में.....है।।

स्थल मंडल पर मानव की, जब बढ़ने लगी, ज्ञान की बांहे।
उसके अथक प्रयासों से ही, फिर खुल गई प्रगति की सब राहें।।
जहाँ सबसे बड़ा उपभोक्ता बनकर किया प्रकृति का शोषण है।
उस नील गगन के प्रांगण में.....हैं।।

सब पारितंत्र इस वसुन्धरा पर, जब चलता है, प्रकृति इशारों से।
बाधायें खड़ी किया करता जग, नित स्वयं की प्रगति प्रसारों से।।
सन्तुलन प्रकृति का बना वहां पर, जहां प्रारम्भ हुआ संरक्षण है।
उस नील गगन के प्रांगन में.....है।।

———————

भारतीय वनस्पति उद्यान

आर के गुप्ता
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा
संगीता कुमारी
संतरागाछी, हावड़ा

हुगली नदी के किनारे बसा
अंग्रेजों द्वारा है यह रचा।
देश का एक अमूल्य निधान,
वह है भारतीय वनस्पति उद्यान।

दो सौ तिहत्तर एकड़ का यह बगान,
करता अपनी कहानी खुद बखान।
पच्चीस डिवीजनों में यह बँटा,
चौबीस झीलों की यहाँ अद्‌भुत छटा।

कुछ झील शैवालों से हरित है,
कुछ विक्टोरिया से सुशोभित है।
कुछ निमफिया से सराबोर है,
कुछ खालीपन से बोर है।

उद्यान का प्रमुख आकर्षण केन्द्र,
शहंशाह की तरह खड़ा बरगद का पेड़।
जिसकी न तो कोई हद है,
खुद तय करता अपनी सरहद है।

पाम हाउस की अद्‌भुत हरियाली,
नर्सरी की छटा निराली।
महानगर के शोर से तंग,
मानव को देती अद्‌भुत आनंद।

ऐसा एक अमूल्य निधान
यह है हमारा भारतीय वनस्पति उद्यान।

———————

पूर्वोत्तर भारत के कुछ उपयोगी एवं आर्थिक महत्व के पेड़-पौधो की प्रजातियाँ–मूल्यांकन एवं संरक्षण

विपिन कुमार सिन्हा एवं एस. एल. अब्बास
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,शिलाँग

पूर्वोत्तर क्षेत्र के अन्तर्गत भारत के आठ राज्य जैसे असम, मेघालया, मिजोरम, मणिपुर, त्रिपुरा, अरूणाचलप्रदेश एवं सिक्किम आते है। यह क्षेत्र अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, अधिकतम वर्षा तथा उच्च आर्द्रता के कारण वनस्पतियों की विविधता के लिये जाना जाता हैं। यहाँ की जलवायु, मृदा एवं पर्यावरण, आर्थिक महत्व वाले उपयोगी बागवानी पौधों जैसे फलदार वृक्ष, खूबसूरत सजावटी फूलों, सब्जियों, कन्दमूल, औषधीय पौधों व अन्य उपयोगी वनस्पतियों की खेती हेतु उपयुक्त है।

यह क्षेत्र उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र के फलों जैसे केला, नारियल, अनन्नास, नीबू, संन्तरा एवं शीतोष्ण क्षेत्र के फलों जैसे सेब, आड़ू, के अलावा सब्जियों, मिर्च, पान, सजावटी पुष्पों कन्द मूल वाले पौधों (जैसे–डायस्कोरिया, अदरक, हल्दी, अरबी, टेपिओका, शकरकन्द) तथा अन्य आर्थिक महत्व के पौधों जैसे चाय, काफी, रबर, औषधीय एवं सुगन्ध वाले पौधों की खेती हेतु भी उपजाऊ एवं उपयुक्त हैं।

उपयोगी पौधों की जंगली-प्रजातियों के बारे में हमारा ज्ञान अभी भी नगण्य ही है। जो भविष्य में उन्नत किस्म की रोग अवरोधी तथा अधिक पैदावार देने वाली प्रजातियाँ तैयार करने में उपयोगी हो सकती हैं। पूर्वोत्तर भारत के ये क्षेत्र इस तरह के उपयोगी पौधों की जंगली प्रजातियों से भरा पड़ा है। आज विकास के कार्यो के कारण इन जंगली प्रजातियों के प्राकृतिक आवास तेजी से नष्ट होते जा रहे है। इन पौधों को संरक्षण प्रदान करने हेतु, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी परिमण्डल, शिलाँग ने इस तरह के उपयोगी पौधों की जंगली प्रजातियों को उनके प्राकृतिक आवास से लाकर यहाँ के वनस्पतिक उद्यान में लगाया है। साथ ही उनका संरक्षण एवं संर्वधन भी किया जा रहा है। जिससे कि भविष्य में अनुसन्धान कार्य हेतु वैज्ञानिकों को ये आसानी से उपलब्ध हो सके।

प्रस्तुत लेख में यहाँ के उपयोगी एवं आर्थिक महत्व वाले पौधों की खेती, उपयोगिता एवं उससे होने वाले आर्थिक लाभ के बारे में विवरण हैं।

फलदार पौधों की खेती :

सन्तरा एवं नीबू के पौधों की खेती मेघालया, अरूणाचल प्रदेश एवं मणिपुर के क्षेत्र में बहुतायत से होती है। यहाँ पर उनकी जंगली प्रजातियाँ भी पाई जाती है जो रोग अवरोधी किस्मे तैयार करने में उपयोगी है। इसके अलावा इस क्षेत्र में कुछ समय से 'अंगूर' व 'चकोतरा' की खेती पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। अन्य फलों में 'अनन्नास' की खेती असम, मेघालया, मणिपूर एवं त्रिपुरा में बहुतायत से होती है।

ठंडी जलवायु वाले फलदार वृक्षों जैसे 'पल्य', आँड़ू, नाशपाती की खेती तो मेघालया, अरूणाचल प्रदेश एवं मणिपूर में पहले से ही होती थी। पर इधर कुछ वर्षों से 'सेब', 'अखरोट', 'बादाम' एवं 'चेस्टनट' की पैदावार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा हैं। उसकी पैदावार हेतु अरूणाचल प्रेदेश के ठण्डे क्षेत्र बहुत उपयुक्त है।

गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में केला, पपिता, नारियल एवं कटहल की पैदावार बहुतायत से होती है।

मसालों में प्रयोग हेतु लाई जाने वाली वनस्पतियों जैसे बड़ी इलायची, काली मीर्च, दालचीनी, जायफल, तेजपाता, सुपारी एवं कैस्टानोपसिस की पैदावार हेतु मेघालया अरूणाचल प्रदेश व मिजोरम का क्षेत्र बहुत उर्वर एवं उपयुक्त है।

सब्जियों की खेती : यह क्षेत्र 'कुकरबीटस' एवं दालवाले पौधों जैसे सेमं, लोबिया, बाकला, फ्रेंचबीन, एवं मटर की प्रजातियों के साथ-२ कंद अथवा राइजोम वाले पौधो जैसे 'अरबी', 'डायस्कोरिया' 'अदरक', 'हल्दी', 'शकरकन्द' एवं टैपिओका' तथा 'पान' की खेती के लिये ऊपजाऊ एवं उपयुक्त है। पिछले कुछ सालों से आलू की पैदावार भी सफलतापूर्वक इस क्षेत्र में हो रही है।

अन्य उपयोगी पौधों की खेती : अन्य उपयोगी आर्थिक महत्व के पौधों में 'रबर' तथा 'काफी' की खेती मेघालया व असम के कुछ क्षेत्रों में की जा रही है। 'रबर' की पौधों को मेघालया में 250 हेक्टेयर क्षेत्र में अभी प्रयोग के तौर पर लगाया गया है। इसी तरह 'काफी' की पैदावार हेतु मेघालया व असम की पहाड़ियाँ जैसे उत्तरी कछार के क्षेत्र उपयुक्त पाये गये है। इन क्षेत्रों से 'काफी' की पैदावार 500 कि. ग्रा.1 हेक्टेयर तक प्राप्त की गई है।

औषधीय पौधों की खेती :

यह क्षेत्र औषधीय एवं सुगन्ध वाले पौधों की खेती के लिये भी अनुकूल है। यह क्षेत्र औषधीय पौधों जैसे : *सर्पगन्धा, कोपटिस, तीता, एकोनिटम, लाइकोपोडियम, टैक्सस, सोलेनम्, सिम्बोपोगान, मेन्था, पैनेक्स, नारडोस्टैकिस, पिक्रोराइजा,* एवं *ऐक्वलेरिया* जैसे अनेकों जीवन रक्षक औषधीय एवं जड़ी-बूटियों का भण्डार गृह है। किन्तु अत्यधिक दोहन के कारण प्रकृति में उनकी संख्या तेजी से घट रही है और आज ये संकट ग्रस्त पौधों की श्रेणी में आ गये है। ऐसे पौधों की खेती के लिये अगर यहाँ के किस्मों को प्रोत्साहित किया जाय तो उन्हें आर्थिक लाभ के साथ साथ पौधों को संरक्षण भी प्राप्त हो सकेगा।

'बाँस' की खेती :

'बाँस' यहाँ के लोगों के जीवन का अभिन्न अंग रहा है। यह क्षेत्र बाँसों की विविधता के लिये प्रसिद्ध है। भारत में पायी जाने वाली बासों के 18 वंशों तथा लगभग 130 जातियों में से करीब 15 वंश तथा 63 जातियाँ इस क्षेत्र में ही पायी जाती हैं। बाँसों का यहाँ के किसानों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने में प्रमुख योगदान हैं। इस क्षेत्र में पायी जानेवाली बाँसों की प्रमुख प्रजातियों में से कुछ को जैसे *बम्बूसा टूल्डा, ब० प्लाइडा, ब० खासीयाना, ब० बल्कोआ, डेन्ड्रोकेलेम्स हूकेरियाई, ड० हैमिल्टोनिआई,* एवं *मेलोकाना बम्बूसोआइडिस* को यहाँ के वनस्पतिक उद्यान में लगाया गया है।

मूल्यवान इमारती लकड़ी :

यहाँ के वनों में वृक्षों की ऐसी जातियाँ पाई जाती है जिनकी लकड़ी उच्चकोटि की होती है। जैसे ऐलन्थस ग्रेंडिस, माइकेलिया चम्पाका, मेसुआ फेरिया, मैग्नोलिया टेरोकार्पा, शोरिया आसामिका, टेक्टोना ग्रेन्डिस एवं दुआबँगा ग्रेन्डीफ्लोरा इत्यादि जिनका उपयोग फार्निचर एवं मकान बनाने में होता है। ऐसे वृक्षों को इस क्षेत्र की बंजर जमीन पर लगाकर वनों के संरक्षण के साथ साथ यहाँ को निवासियों के आर्थिक लाभ भी प्राप्त होगा।

फसली पौधों की जंगली प्रजातियाँ :

पूर्वोत्तर भारत के मेघालया, नागालैण्ड, मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश के क्षेत्र अनेको फसली व अन्य उपयोगी पौधों की उत्पत्ति का प्रमुख केन्द्र भी माना जाता है। यहाँ पर 'केला', 'नीबू', 'पान', 'मिर्च', 'हल्दी' चाय', 'अरबी', 'कालीमीर्च' तथा अनेकों प्रकार की दालों व अनाज की जंगली प्रजातियाँ पाई जाती है। इसके अतिरिक्त 'कुकरबिटेसी' कुल की अनेको प्रकार की किस्में जो अन्य कहीं नहीं मिलती, इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में पाई जाती हैं। इन सभी जंगली प्रजातियों का उन्नत तथा रोग अवरोधी किस्मे तैयार करने में हो सकता

है। यह क्षेत्र 'ताड' (पाम) की कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियों की उत्पत्ति का भी केन्द्र माना जाता है। जिनमें नारियल, सोपारी व खँजूर प्रमुख है। ऐसे पौधों को उनके प्राकृतिक स्थान से लाकर यहाँ के वनस्पतिक उद्यान में संरक्षण एवं संवर्धन हेतु लगाया गया है।

सजावटी पुष्पों की खेती :

आर्किड अपने अनेकों आकार एवं खूबसूरत रंगों तथा लम्बे समय तक बने रहने वाले पुष्पों के लिये प्रसिद्ध हैं। ये अपनी मनोहारी छटा से सभी को आकर्षित कर लेते हैं। सुन्दर एवं टिकाऊ फूलों वाले आर्किड की माँग संसार भर में निरन्तर बढ़ रही है। जिस कारण वनों से इनको बड़ी मात्रा में एकत्रित किया जा रहा है। इस कारण इनके अनेकों वंश एवं जातियाँ दुर्लभ या लुप्तप्राय हो गई है। आज भारत में पाई जाने वाली लगभग १३०० जातियाँ में से ३०० जातियाँ ऐसी है जिनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। इसका प्रमुख कारण इनकी बढ़ती हुई माँग व्यापार एवं वनों का विनाश है। आकर्षक फूलों वाले प्रमुख वंश जैसे : *सिलोर्गाइन, सिम्बीडियम, डेन्ड्रोबियम, पैफियोपेडिलम, रेनेन्थेरा* एवं *वान्डा* है। इन पौधों की व्यापरिक स्तर पर खेती यहाँ के किसानों को आर्थिक लाभ के साथ साथ इन पौधों को संरक्षण भी प्रदान करेगी।

अन्य सजावटी पौधों की प्रजातियों में प्रमुख है :

रोडोड्रेन्ड्रोन : इनके पुष्प अपने आकर्षक रंगों की वजह से लोगों को आकर्षित करते है। 'रोडोडेन्ड्रोन' प्रमुखतः 2500 मीटर से ऊपर, हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है। अरूणाचल प्रदेश को 'रोडोडेन्ड्रोन' की रवान भी कहा जाता हैं। भारत में पाई जाने वाली 90 जातियों से 80 जातियाँ इसी क्षेत्र में पाई जाती है।

हेडीकियम तथा अन्य :

'हेडीकियम' को गारलैंड फलावर, जिँजर, लिली, बटर-फ्लाई इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। 'हेडिकियम' की सर्वाधिक प्रजातियाँ इस क्षेत्र में पाई जाती है। 'हेडीकियम' अपने सुन्दर व आकर्षक, मीठी सुगन्ध वाले फूलों के लिये प्रसिद्ध है। इनको आसानी से उद्यानों में लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य पौधों में जैसे 'प्रिमुला', 'आइरिस', 'एस्टर', 'मैग्नोलिया', 'टक्का', 'जैस्मीनम', 'एनिमोन' आदि को भी सजावटी पुष्पों के रूप में प्रयोग किया जाता है।

अन्त में हम यह कह सकते है कि इन उपयोगी बागवानी वाले पौधों की खेती से यहाँ के किसानों निवासियों को आर्थिक लाभके साथ ही वनों के अत्यधिक दोहन के कारण संकटग्रस्त अथवा लुप्तप्राय होने के कगार पर पहुची पौधों की अनेकों प्रजातियों को संरक्षण भी प्रदान हो सकता है।

ऐसे पौधों की पैदावार हेतु किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रदेश सरकार को अनुसन्धान संस्थानों को स्थापित करना, किसानों को ऐसे पौधों की खेती हेतु प्रशिक्षण प्रदान करना तथा पैदावार को बाजार उपलब्ध कराने में अपनी सक्रिय भूमिका निभानी होगी।

———————

सबसे बड़ा फूल

प्रबीर रंजन सूर व सव्यसाची साहा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

फूलों में सबसे बड़ा फूल है रेफलेसिया। यह विश्व का सबसे बड़ा फूल है। इसका व्यास 50-90 सेंटीमिटर तक होता है एवम वजन 10 किलो। इसे पूर्ण फूल का आकार लेने में डेढ़ साल तक का समय लग जाता हैं। परन्तु आश्चर्य की बात है कि फूल को झड़ने में केवल 2-3 दिन लगते हैं। सुगन्ध नही अपितु इसका गन्ध सड़े मांस की तरह होता है।

इस पौधे के आविष्कारक है दो व्यक्ति यथा सर थॉमस स्टैम्प फोर्ड रेफ्ल्स व डा० जोसेफ ऑर्नल्ड। सन् 1818 में सुमात्रा (इन्दोनेशिया) के बेनकोलेन के वन में इस फूल के पौधे को पहली बार इन्होने दृष्टिगोचर किया थाा। तत्पश्चात एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने उपरोक्त वैज्ञानिकों के सम्मान में इस पौधे का नाम ''रेफलेसिया आर्नल्डाइ'' रखा।

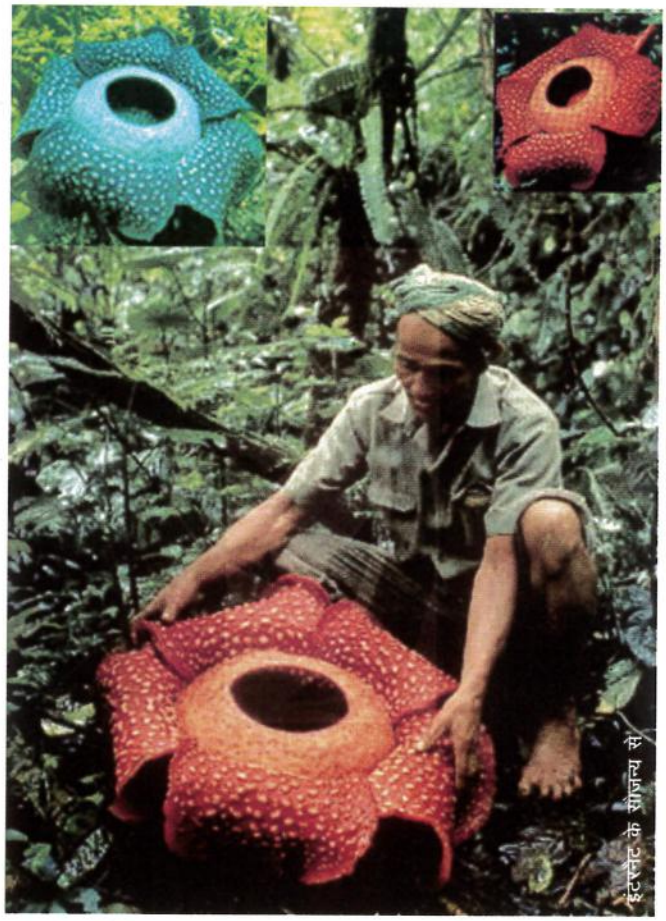

रेफलेसिया की कुछ प्रजातियाँ

यह पौधा अंगूर प्रजाति के पौधे की जड़ पर पूर्ण परजीवी पौध की तरह रहता है। इस पौधे के कुछ फूल जड़ के निकट प्रस्फुटित न होकर तने में खिलते हैं। यह कली से पूर्ण फूल के रूप में विकसित होने में काफी समय लेता है। अवलोकन से पता चला है कि 1.5 सेमी से 4 सेमी तक विकसित होने में इस फूल को 188 दिन का लम्वा समय लग जाता हैं। उसके बाद भी 4 से. मी. से पूर्ण फूल का रूप लेने में इसे 310 दिन का समय लगता है। इस फूल का रंग ईंट के रंग जैसा गाढ़ा बदामी रंग लिये होता है। इसके फूल एक लिंगी होते है अर्थात पुलिंग व स्त्रीलिंग अलग अलग।

———————

हरितोद्भिद – एक परिचय

सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

मनुष्य की तीन बुनियादी जरूरतों ''रोटी, कपड़ा और मकान'' की पूर्ति किसी न किसी रूप में पेड़ पौधों से ही होती है। ऐसे में हमारा जन जीवन पौधों से कितना प्रभावित होता है यह कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। पेड़ पौधों से जहाँ हम अपनी जरूरतें पूरी करते हैं वहीं येह पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने में सहायक तथा प्रकृति का अभिन्न अंग हैं। मनुष्य के द्वारा प्रकृति के निरंतर दोहन करने के कारण पेड़ पौधों की जातियों की संख्या में निरंतर ह्रास हो रहा है। फलःस्वरूप न केवल हमारे देश बल्कि समूचे विश्व के सामने अनेकों प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय समस्याएं जन्म ले रही हैं।

कोनोसेफेलम कोनिकम

ऐसे में समाज के सामने उन नूतन आयामों और स्रोतों के बारे में जानने सोचने या खोजने की आवश्यकता है जिनसे मनुष्य की वे बुनियादी जरूरते पूरी की जा सकें जिसके कारण ये समस्याए उत्पन्न हो रही हैं।

हमारा देश प्राकृतिक सम्पदाओं से सुसज्जित, विश्व के 12 देशों में से एक है जहाँ जैव विविधता सर्वाधिक हैं। आज देश में पादप वनस्पतियों की लगभग 45,000 जातियां ज्ञात हैं जो कि विश्व की तमाम वनस्पतियों की 11 प्रतिशत हैं। इनमें से 27,046 जातियां अथवा 60 प्रतिशत अपुष्पी पौधों अर्थात क्रिप्टोगैम्स (Cryptogams) की है जिन पर देश में बहुत कम शोध कार्य हुआ हैं। एक बड़ा भूभाग अभी भी सर्वेक्षण के लिए शेष हैं।

इन्हीं अपुष्पी पौधों के समूह में से हरितोद्भिद (Bryophytes) एक अल्पज्ञात किन्तु रोचक पौधों के समूह है जो भविष्य में काफी उपयोगी साबित हो सकते हैं। जरूरत है इन पर गहन शोध कार्यों की। इस समूह के पौधों के आर्थिक महत्व के बारे मे अभी अधिक जानकारी नहीं है। पर ये प्राणीतंत्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इनकी बहुत सी प्रजातिया जैसे *ब्लेसिया पुसिला, एन्थोसेरास* वंश, *नोटोथैलस* बंश आदि में उपस्थित नील हरित शैवाल (Blue green algae) वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) कर भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाते है। ये पानी की अत्यधिक अवशोषक क्षमता के कारण वायुमण्डल में उपस्थित नमी को अवशोषित करके वहाँ की भूमि को मरूस्थल होने से बचाते है तथा आवास परिवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इनमे उपस्थित रासायनिक तत्व फ्लेविनायड, टर्पिनायड प्राकृतिक जीवाणुनाशक, कीटाणुनाशक का काम करते हैं। इनकी बहुत सी जातिया औषधीय गुण रखती हैं जैसे मारकेन्सिया पालीमार्फा, कोनोसिफेलम, काइलोसाइफस एल्विकेन्स आदि। पर इनका अत्यंत महत्वपूर्ण उपयोग पर्यावरण प्रदूषण का पता लगाने व उसके निगरानी हेतु किया जाता है। साथ ही ये पौधे अपने परिमाण

से कई गुणा अधिक हैवी मेटल्स के शोषण के शोषण क्षमता के कारण ये जैविक संग्रहक के रूप में महत्व पूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान मे इस समूह पर जापान, अमरीकी व युरोपीय देशों में गहन शोध कार्य किए जा रहे हैं और इनका औद्योगीकरण किया जा रहा है। अमेरिका में इनका उपयोग इंधन (domestic fuel) के रूप में, पूर्व सोवियत संघ एवं आयरलैण्डमें इनका उपयोग विद्युत उत्पादन में किया जा रहा है। हतरतोद्भिदो की अनेको जातियों से ऐसे अनेक रासायनिक तत्वों की खोज हुई है जिनके उपयोग से बहुत सारी असाध्य बीमारियों जैसे कैंसर, पोलियों, ट्यूवरकुलोसिस आदि के इलाज में सहायता मिल सकती है।

इस समूह के पौधे प्रायः नमी एवं छायाप्रिय होते हैं। सामन्यरूप से ये गुच्छेदार चकत्तों में जमीन, दीवारों, चटटानो, वृक्षों की छालों तथा पत्तियों की सतह पर उगते है। इनकी कुछ जातिंया पूर्णतः जलीय हैं जैसे रिक्सिया फ्लूटेन्स, रिक्सिथोकार्पस नेटेंस रिपला एफनिस आदि। इनकी कुछ जातियां शुष्कानुकूलित भी है तथा अपेक्षाकृत शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती हैं जैसे प्लेजिओकाज्मा (एपेन्डीकुलेटम, एस्टेरेला पठानकोटेंसिस, रिबूलिया हेमिस्फेरिका, टार्जियोनिया हाइपाफिला पालीट्राइकम बंश, पोगोनेटम वंश, फिसिडेन्स वंश आदि। इनमें बक्सवाभिया व क्रिप्टोथैलश वंश जो कि मृतोपजीवी है, को छोड़कर सभी जातियां स्वपोषी होती हैं।

हरितोद्भिद प्राय श्यान (prostrate) या सूकाय (thalloid) या पर्णिल (leafy) जड़ तने एवं पत्तियों में विभक्त होते हैं। ये विभिन्न आकार के होते हैं इनको युग्मकोद्भिदों एवं बीजाणुद्भिदों एवं वीजाणुद्भिदों की संरचना के आधार पर इन्हें मॉस (Bryopsida), लिवरवर्टस (Hepaticopsida) एवं हार्नवर्ट (Anthocerotopsida) में बांटा गया हैं।

हरितोद्भिदों पर शोधकार्यों की शुरूआत भारत में वास्तव में यूरोपीय वनस्पतिज्ञों द्वारा हुयी। परन्तु भारतीय वनस्पतिज्ञों का ध्यान इस दिशा में आकर्षित करने का श्रेय स्व० प्रो० शिवराम कश्यप को जाता है, जिनको भारतीय हरितोद्भिद विज्ञान का जनक कहा जाता है। इन्होने 1914-1932 की अवधि में पश्चिमी हिमालय एवं पंजाव के मैदानी क्षेत्रों के लिवरवर्ट्स पर कार्य किया। तदुपरान्त स्व० प्रो एस० के पाण्डेय, स्व० प्रो० रामउदार एवं स्व० प्रो० एच० सी० गांगुली ने भारतीय हरितोद्भिदों पर महत्वपूर्ण योगदान दिए।

वर्तमान आंकड़ों के अनुसार भारत में हरितोद्भिदो की 2850 जातियां है जोकि 483 वंशों एवं 108 कुलों में विभक्त है। 1513 जातियों के साथ पूर्वी हिमालय सर्वाधिक जातीय विविधता वाला तथा 986 जातियों के साथ पश्चिमी हिमालय तत्पश्चात 820 जातियों के साथ पश्चिमी घाट हरितोद्भिदों की विविधता के प्रमुख केन्द्र हैं। माँस के कुलों में पोट्टिएसी 190 जातियों के साथ सबसे बड़ा कुल तथा 67 जातियों के साथ *फिसिडेंस* सबसे बड़ा वंश हैं। लिवरवर्ट्स के कुलो में 155 जातियों के साथ लिजुनिएसी सबसे बड़ा कुल एवं 114 जातियों के साथ *प्लेजिओकाइला* सबसे बड़ा वंश है। हरितोद्भिदों की भारत मे पायी जाने वाली कुल जातियों की 32.5 प्रतिशत स्थानिक है।

अंततः इन अपुष्पी पौधों के समूह, जो कि अपनी अनुकूलन क्षमता, तीव्र वृद्धि, अत्यधिक नमीशोषक, सूखा विरोधी विशेषताओं के लिए जाने जाते है, पर शोध कार्य तेज करने की आवश्यकता है। हमारे देश में इस क्षेत्र में कार्य करने वाले विशेषज्ञों की कमी है। अतः इस दिशा में जो लोग कार्य कर रहे हैं उन्हें उच्चश्रेणी का प्रशिक्षण एवं तकनीकी ज्ञान विशेषज्ञों द्वारा दिलाया जाय जिससे इस दिशा में क्रान्तिकारी शोध संभव हो सकें।

————————

बाँस - सर्वगुण संपन्न प्राकृतिक संसाधन

पुष्पा कुमारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

'बाँस' (वेणु) वनस्पति जगत के ''पोएसी'' कुल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो उपकुल ''बैम्बुस्वाईडी'' के सदस्यों के लिए प्रचलित है। विश्व में बाँस की लगभग 1250 जातियाँ हैं जो मुख्यतः दक्षिण पूर्व एशिया में पायी जाती है। भारत के समूचे वन भू-भाग के लगभग 12.8 प्रतिशत क्षेत्र में बाँस की लगभग 125 प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें उत्तर-पूर्वी राज्यों में इनका घनत्व सबसे अधिक है।

बम्बूसा वलगेरिस

बाँस एक चिर-परिचित सर्वाधिक उपयोगी घास है और विश्व की लगभग एक तिहाई जनसंख्या इसका प्रयोग विविध रूपों में करती है। जापान और चीन में बाँस को 1500 से अधिक तरीकों से प्रयोग में लाया जाता है। यह शुरू से हमारी संस्कृति का एक अहम हिस्सा बना हुआ है, और इसके बढ़ते अगणनीय आयाम पाषाण-युग, कांस्य- युग तथा लौह-युग की तरह आने वाले ''बाँस-युग'' को प्रदर्शित करते हैं।

ग्रामीण जीवन में बाँस के महत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती है, क्योंकि एक आम आदमी के जन्म से मृत्यु तक बाँस का उपयोग होता है। युगों से लोग घर, भोजन, कृषिउपकरण, बर्त्तन, घरेलू सामान हथियार, औजार तथा अन्य इस्तेमाल की वस्तुएँ जैसे टोकरियाँ, छड़ी, छाता, खिलौने, पंखे आदि के लिए इसका प्रयोग करते है। इसके अलावा कागज-उद्योग में इसका महत्वपूर्ण योगदान है और अपने गुणों के कारण इसने प्लास्टिक तथा स्टील के इस युग में भी अपनी महत्ता बरकरार रखी है।

अन्य लकड़ियों की अपेक्षा यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध, हल्का, सीधा, मजबूत तथा आसानी से प्रयोग में लाया जाने वाला संसाधन है, जिसकी वजह से विविध उपयोगों में इसकी माँग है। जहाँ दूसरे वृक्षों को तैयार होने में वर्षों लगते हैं वहीं बाँस सिर्फ तीन-चार साल की अल्प-अवधि में काटने योग्य हो जाता है, जो इसकी बहुत बड़ी खासियत है। पहले जहाँ लोग इसे गरीबों के इस्तेमाल का सस्ता संसाधन मानते थे, वहीं नई तकनीकि के साथ इसके महत्व तथा उपयोग दुनिया भर में प्रखर हो रहे हैं। यह आज टीक तथा प्लाईवुड की जगह उच्चकोटि के टिकाऊ तथा खूबसूरत निर्माण कार्य में, जीवाणुरोधक क्षमता के कारण चिकित्सा

संबंधित उपयोगी सामानों; औषधीय गुण के लिए कई बीमारियों जैसे दम्मा, खाँसी, पक्षाघात, गठिया, स्त्री-रोग, मसूड़ों की बीमारी, कृमि तथा घाव आदि के उपचार में, खाद्य सामग्री के रूप में; धुँआ रहित चारकोल, डीजल तथा बिजली के उत्पादन में; इसके पतले, चिकने रेशों में सूक्ष्म छिद्रों की उपस्थिति से रेशम और लिनेन से बेहतर सोखने की क्षमता वाले आरामदेह कपड़ों के निर्माण आदि में इस्तेमाल किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त पर्यावरण की गंभीर समस्यायों जैसे – भूस्खलन, भूमि-अपरदन, मरूस्थलीकरण, प्रदूषण, बारिश की अनियमितता तथा नमी, तापमान वृद्धि आदि में सुधार के लिए बाँस उगाया जाना सर्वोत्तम उपाय है। यह कम समय में हरियाली ला सकता है, इसकी जड़ें मृदा संरक्षण कर भूमि को उपजाउ बनाती हैं। इसके मजबूत, सीधे तने तूफान तथा जल के वेग को कम कर भूमि के कटाव तथा अपरदन को रोकते हैं। इसका अधिकांशतः सदाबहार रूप पर्याप्त हरियाली तथा वर्षा का प्रमुख घटक है।

अतः चीन और जापान के अनुभव तथा वर्तमान और भविष्य में बाँस की अपार संभावनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि पर्यावरण, और देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने में बाँस तथा बाँसजनित उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका है जिसे व्यापक स्तर पर आगे बढाने की जरूरत है।

बाँस की कुछ प्रमुख प्रजातियां एवं पारम्परिक उपयोग

प्रजाति		उपयोग
1. *ड्रेपनोस्टैकियम फाल्केटम* एवं		
2. *थेमनोकलमस स्पाथीफ्लोरस*	–	फिसींग रॉड, हुक्का पाइप, पाइप, मैट, टोकरी
3. *युशानीया रेसीमोसा*	–	छत एवं गृह निर्माण
4. *बम्बूसा अरण्डीमेसीया*	–	पोल, सीड़ी, स्केफोल्डिंग
5. *ब० बालकुया*	–	पेपर
6. *ब० टूल्डा*	–	स्केफोल्डींग छत, मैट
7. *ब० पालीमार्फा*	–	निर्माण कार्य, छत
8. *ब० वल्गेरीसं*	–	फरनीचर खिलौने निर्माण कार्य
9. *शाइजोस्टेकीयम परग्रेसाईल*	–	पेपर, पल्प, निर्माण कार्य, फिशिंग रॉड
10. *शा० पालीमार्फम*	–	छड़ी, मैट, टोकरी, छाता, हैण्डल इत्यादि
11. *डेन्ड्रोकलमस गीगेंसीथस*	–	घर, मैट, बर्तन
12. *डे० हेमील्टोनी*	–	पेपर निर्माण कार्य, टोकरी, मैट
13. *डे० लोंगीस्पेथस*	–	टोकरी
14. *डे० स्ट्रीकटस्*	–	फर्नीचर, टूल, हैन्डल, घर, निर्माण कार्य, टोकरी, मैट इत्यादि
15. *गाइगेन्टोक्लोया मेकोस्टेकीया* एवं		
16. *गा० रोस्ट्रेटा*	–	मैट, टोकरी इत्यादि
17. *मेलोकाना बक्कीफेरा*	–	टोकरी, मैट, निर्माण कार्य इत्यादि।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इक्कीसवी शताब्दी में बाँस एक सर्वगुण संपन्न संसाधन के रूप में उन्नत फैशन परिधानों से लेकर उच्च कोटि के निर्माण कार्य, फर्नीचर इत्यादि में प्रचलित होने की दिशा में अग्रसर है।

———————